सद्गुरवे नमः

संत कबीर की विवेकधारा से अनुप्राणित

पारख प्रकाश

कबीर जयन्ती विशेषांक

वर्ष 51

जुलाई-अगस्त-सितम्बर
2021

अंक 1

ज्ञान, भक्ति, वैराग्य, एकता तथा मानव-धर्म-प्रेरक हिन्दी पत्रिका

विषय-सूची

प्रवर्तक
सद्गुरु श्री रामसूरत साहेब
श्री कबीर मन्दिर, बड़हरा
पोस्ट—मदोबाजार
जिला—गोंडा, उ०प्र०

आदि संपादक
सद्गुरु श्री अभिलाष साहेब

संपादक
धर्मेन्द्र दास

आदि व्यवस्थापक
प्रेम प्रकाश

मुद्रक एवं प्रकाशक
गुरुभूषण दास

पारख प्रकाश इंटरनेट पर
www.kabirparakh.com

वार्षिक शुल्क : 50.00
एक प्रति : 13.00
आजीवन सदस्यता शुल्क
1250.00

कविता	लेखक	पृष्ठ
लोगा तुमहीं मति के भोरा	सद्गुरु कबीर	1
निज ज्ञान ध्यान में	जितेन्द्र दास	25

स्तंभ

पारख प्रकाश / 2 व्यवहार वीथी / 20 परमार्थ पथ / 29
बीजक चिंतन / 31

लेख

कबीर की शक्ति	श्री सुकन पासवान 'प्रज्ञाचक्षु'	9
क्रान्तिकारी समाज-सुधारक...कवि	श्री अवधेश नारायण मिश्र	16
साधना पथ में सावधानी	भूपेन्द्र दास	23
व्यक्तित्व निर्माण के चार सोपान	विवेक दास	26
इच्छाओं पर नियंत्रण	धर्मेन्द्र दास	36
सबेरे की रोशनी	श्री खलील जिब्रान	41
सुखी जीवन की चाबी	गुरुवेन्द्र दास	49
हमें भय क्यों होता है?		54

नम्र निवेदन

सन् 1971 में जब पारख प्रकाश का प्रकाशन शुरू हुआ था तब इसे स्थायी बनाने के लिए इसकी आजीवन सदस्यता प्रारंभ की गयी थी और उस समय इसका आजीवन सदस्यता शुल्क 100 रु. रखा गया था जो इस समय क्रमशः बढ़ते हुए 1250 रु. है।

प्रायः आजीवन सदस्यता 20 या 25 वर्ष की मानी जाती है, परंतु सद्गुरु कबीर के विचारों के प्रचार-प्रसार की दृष्टि से हम अपने उन सभी ग्राहकों को पारख प्रकाश भेजते रहे हैं जो 30-40 वर्ष पूर्व आजीवन सदस्य बने थे। परंतु कागज की कीमत तथा प्रकाशन व्यय में लगातार वृद्धि होने के कारण अब उन ग्राहकों को पत्रिका भेजना कठिन हो रहा है जो 30-40 वर्ष पूर्व आजीवन सदस्य बने थे। अतः आजीवन ग्राहक नं. 1 से लेकर 1300 तक की पत्रिका मार्च 2021 के बाद बंद कर दी गयी है।

ग्राहक नं. 1 से 1300 तक के जो आजीवन सदस्य थे, यदि आप आगे भी पारख प्रकाश पढ़ना चाहते हैं और सद्गुरु कबीर साहेब के मानवतावादी विचारों के प्रचार-प्रसार में सहयोगी बने रहना चाहते हैं तो वर्तमान वार्षिक सदस्यता शुल्क 50 रु. या आजीवन सदस्यता शुल्क 1250 रु. अवश्य भिजवायें। आप अपना सदस्यता शुल्क मनीआर्डर से या बैंक के माध्यम से भिजवा सकते हैं। बैंक का विवरण इस प्रकार है—

1. कबीर पारख संस्थान वास्ते पारख प्रकाश
   यूको बैंक, खाता नं. 19780100000003, IFSC Code : UCBA-0001978
2. कबीर पारख संस्थान-पारख प्रकाश विभाग
   यूनियन बैंक ऑफ इण्डिया, खाता सं. 538702010001907, IFSC Code : UBIN 0553875

R.N.I.'s Regd. No. 18528/71 Postal Regd. No. A.D. 253/2000

कबीर पारख संस्थान, इलाहाबाद

का

चौवालीसवां वार्षिक अधिवेशन

दिनांक—18-19-20 अक्टूबर 2021

दिन—सोमवार, मंगलवार, बुधवार

क्वार शुक्ल त्रयोदशी, चतुर्दशी एवं पूर्णिमा

स्थल–कबीर आश्रम, कबीर नगर, इलाहाबाद

नोट : प्रशासन की अनुमति पर ही वार्षिक अधिवेशन का कार्यक्रम संपन्न होगा।

निवेदन

1. पारख प्रकाश प्रतिवर्ष जनवरी, अप्रैल, जुलाई एवं अक्टूबर में प्रकाशित होता है। यदि इन महीनों की आखिरी तारीख तक आपको अंक न मिले, तो इसकी शिकायत अवश्य भेजें, ताकि आपको दूसरी प्रति भेजी जा सके। देर से शिकायत मिलने पर दूसरी प्रति भेजने में हमें काफी असुविधा होती है।

2. आशा है यह पत्रिका आपके लिए रुचिकर, ज्ञानवर्धक एवं प्रेरणादायी सिद्ध हुई होगी तथा आगे भी आप इसके ग्राहक बने रहना पसन्द करेंगे और दूसरों को भी इसके ग्राहक बनने के लिए प्रेरित करेंगे। इसे अधिक स्थायी तथा नियमित बनाने के लिए आप स्वयं इसके आजीवन ग्राहक तो बनें ही दूसरों को भी आजीवन ग्राहक बनने के लिए प्रेरित करें।

3. यदि आपका शुल्क इस अंक के साथ समाप्त हो रहा है तो अगले अंक के लिए अपना शुल्क यथाशीघ्र भेज दें, जिससे अगला अंक आपको समय से मिल सके। पत्र तथा शुल्क भेजते समय अपना ग्राहक नं० अवश्य लिखें।

एक प्रति 13 रुपये | वार्षिक 50 रुपये | आजीवन 1250 रुपये

लेख, कविता, सदस्यता-शुल्क भेजने तथा सब प्रकार के पत्र व्यवहार का पता

पारख प्रकाश

संत कबीर मार्ग, प्रीतमनगर

इलाहाबाद–211011

फोन : (0532) 2090366, 7376786230

Vist us : www.kabirparakh.com

E-mail : kabirparakh@yahoo. com

ग्राहक नं०

कबीर पारख संस्थान के लिए गुरुभूषण दास द्वारा प्रकाशित एवं इण्डियन प्रेस प्रा.लि., पन्ना लाल रोड, इलाहाबाद से मुद्रित

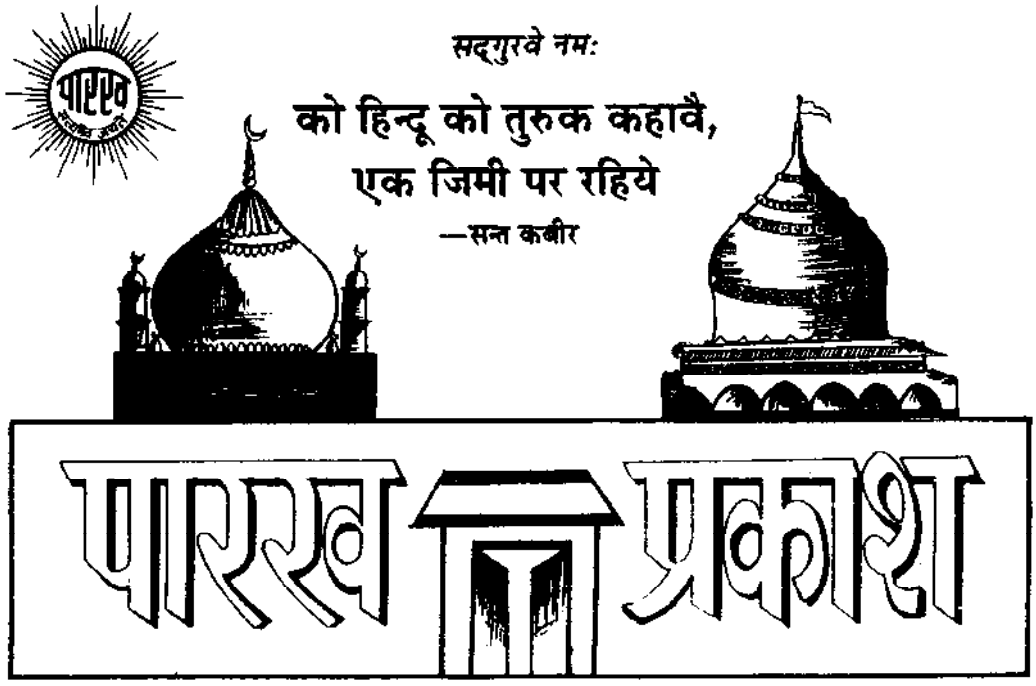

सबै भूमि बनारसी, सब नीर गंगा होय ।
ज्ञानी आतम राम है, जा घट परगट होय ॥ कबीर साखी॥

वर्ष 51] प्रयागराज, आषाढ़, वि. सं. 2078, जुलाई 2021, सत्कबीराब्द 623 [अंक 1

लोगा तुमहीं मति के भोरा ॥ 1 ॥
ज्यों पानी पानी मिलि गयऊ, त्यों धुरि मिला कबीरा ॥ 2 ॥
जो मैथिल को साँचा ब्यास, तोहर मरण होय मगहर पास ॥ 3 ॥
मगहर मरै मरै नहिं पावै, अन्तै मरै तो राम लजावै ॥ 4 ॥
मगहर मरे सो गदहा होय, भल परतीत राम सो खोय ॥ 5 ॥
क्या काशी क्या मगहर ऊसर, जो पै हृदय राम बसै मोरा ॥ 6 ॥
जो काशी तन तजै कबीरा, तो रामहि कहु कौन निहोरा ॥ 7 ॥

× × ×

हरिजन हंस दशा लिये डोले, निर्मल नाम चुनी चुनि बोले ॥ 1 ॥
मुक्ताहल लिये चोंच लोभावै, मौन रहे कि हरि यश गावै ॥ 2 ॥
मान सरोवर तट के बासी, राम चरण चित अन्त उदासी ॥ 3 ॥
कागा कुबुधि निकट नहिं आवै, प्रतिदिन हंसा दर्शन पावै ॥ 4 ॥
नीर क्षीर का करे निबेरा, कहहिं कबीर सोई जन मेरा ॥ 5 ॥

पारख प्रकाश

कबीर संदेश

जिन महापुरुषों के द्वारा समाज को प्रकाश मिलता है, नयी दिशा मिलती है, जीवन को सही ढंग से जीने की कला मिलती है, अपने आप को दुखों से बचाने का ज्ञान होता है, साथ-साथ स्वरूप का बोध होता है उन महापुरुषों को याद करने के लिए उनकी जयंती मनायी जाती है।

दुनिया में अनेक महापुरुष हुए हैं। कोई ऐसा देश, ऐसी परंपरा एवं ऐसा समाज नहीं है जिसमें महापुरुष पैदा न हुए हों। समय-समय से अनेक महापुरुष पैदा हुए हैं और देश-दुनिया पर उनका अनंत उपकार रहा है। उन महापुरुषों में सद्गुरु कबीर एक अद्भुत और निराले महापुरुष हुए हैं। जिस समय वे पैदा हुए उस समय अनेक प्रकार की समस्याएं समाज में थीं।

सभी जानते हैं कि उनका पालन-पोषण अत्यंत गरीब परिवार में हुआ था जहां जीवन निर्वाह की वस्तुएं भी बड़ी कठिनाई से मिलती थीं। पढ़ने-लिखने की उनको कोई सुविधा मिली नहीं, बल्कि उन्हें पढ़ने-लिखने से मना ही किया गया। कहते हैं कि जब कबीर की उम्र पांच-सात वर्ष की हुई तो नीरू उन्हें एक मौलवी के पास ले गये। मौलवी ने पूछा—इस बच्चे को यहां क्यों लाये हो? नीरू ने बहुत विनम्रता के साथ कहा—हुजूर! यह बच्चा पढ़ना चाहता है। बहुत जिद कर रहा है कि मैं पढ़ूंगा। इसकी जिद को देखकर इसे पढ़ाने के लिए आपके पास लाया हूं। जैसे आप अन्य बच्चों को पढ़ाते हैं वैसे ही उन बच्चों के साथ इसको भी पढ़ाने की कृपा करें। नीरू की बात सुनकर मौलवी कहता है—जुलाहे का बेटा पढ़ेगा तो कपड़ा कौन बुनेगा? इसलिए ले जाओ इसे और कपड़ा बुनना सिखाओ। पढ़ाने-लिखाने का सपना मत देखो।

कबीर साहेब को पढ़ने-लिखने की क्या सुविधा मिली कुछ कहा नहीं जा सकता। राजनीतिक समस्याएं भी कुछ अलग थीं। उस समय मुसलमानों का शासन था और धर्म-मजहब को लेकर बड़ी कट्टरता थी उस जमाने में। आज भी जब जमाना इतना आगे बढ़ गया है, विज्ञान का इतना विकास हो गया है, आप मुसलमानों के विश्वासों के विरुद्ध, मुसलमानों के मजहब के विरुद्ध कुछ भी कह दें तो आपका जीना मुश्किल हो जायेगा। आज यह स्थिति है तो कबीर साहेब के जमाने में तो और बड़ी कट्टरता रही है।

कहा जाता है कबीर साहेब के जमाने से थोड़ा पहले ही लखनऊ में एक ब्राह्मण ने कह दिया था कि जैसे मुसलमानी मत से कल्याण हो सकता है वैसे ही हिन्दू मत से भी कल्याण हो सकता है। इसी बात पर उसको सूली दे दी गयी थी कि तुमने मुसलमानों के साथ हिन्दुओं की तुलना कैसे कर दी। कहां मुसलमान और कहां हिन्दू ! दोनों बराबर कैसे हो सकते हैं। उसने कोई गलत बात नहीं कही थी। लेकिन इस विचार को मुसलमानों ने अपने मत का अपमान मान लिया था और इसी पर ही उसको सूली पर चढ़ा दिया गया था।

उस समय मुसलमान शासक धर्म के नाम पर बहुत अत्याचार कर रहे थे। इधर हिन्दुओं के यहां वर्ण व्यवस्था को बड़ी कट्टरता से लागू किया जा रहा था। यह कह दिया गया था कि हिन्दू समाज में जो दस-बीस प्रतिशत सवर्ण लोग हैं उन्हें ही पढ़ने-पढ़ाने का अधिकार है। अच्छा कपड़ा पहनने का अधिकार है, अच्छा घर बनाने का अधिकार है। धन-जमीन-जायदाद रखने का अधिकार है। बाकी अस्सी-पचासी प्रतिशत लोगों को पढ़ने का भी अधिकार नहीं है। जिनको शूद्र कहा जाता है उनकी संख्या बहुत विशाल है। आप यह मत समझियेगा कि जिनको चमार, पासी आदि कहा जाता है वे ही शूद्र हैं। हिन्दुओं के जो धर्मग्रंथ हैं उनके अनुसार साहू, कुर्मी, यादव, लोहार, सुनार, मुराव, केवट आदि जितनी पिछड़ी जातियां हैं सबके सब शूद्र हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय और बनिया इनको छोड़कर जितने हैं

वे सबके सब शूद्र हैं। इनको पढ़ने-लिखने का अधिकार नहीं है। पढ़ना-लिखना तो दूर उनको बढ़िया कपड़ा पहनने का भी अधिकार नहीं है। कहा गया है कि शूद्र लोग वह कपड़ा पहनें जिसे ब्राह्मणों ने घूर पर फेंक दिया हो। शूद्रों को नये जूते पहनकर चलने का अधिकार नहीं है। यदि पहनकर चलते हैं तो ब्राह्मणों का अपमान होगा। ऐसी कट्टरता उस जमाने में चल रही थी।

कबीर साहेब के काल में चारों तरफ जकड़न ही जकड़न थी। कहीं निकलने का कोई रास्ता दिखाई नहीं पड़ रहा था। ऐसे समय में सद्गुरु कबीर ने अपनी बात समाज के सामने रखी और बड़ी निर्भयता के साथ रखी। उनका तर्क इतना पैना तथा लाजवाब रहता था कि किसी के पास उसका उत्तर नहीं था। आज तो हम लोग स्वतंत्र भारत में जी रहे हैं, धर्म की आजादी हमारे पास है, खाने-पीने का पूरा सामान हमारे पास है, सुख-सुविधाएं हमें मिली हुई हैं कबीर साहेब के जमाने में ये सब कहां थे? कबीर साहेब के साथ कोई नहीं था। उनके साथ वे स्वयं थे।

कल्पना करें कि आप रास्ते में जा रहे हों, बहुत थके हुए हों और बड़ा ऊंचा दुर्गम पहाड़ सामने आ गया हो। उस पहाड़ को पार किये बिना आगे बढ़ नहीं सकते, अपनी मंजिल तक जा नहीं सकते। क्या स्थिति होगी? हिम्मत हारकर बैठ जाना पड़ेगा, क्योंकि दुर्गम पहाड़ को पार करना है। अलग से रास्ता कहीं है ही नहीं, आप बिल्कुल अकेले हैं। हिम्मत पस्त हो जायेगी और बैठ जाना पड़ेगा। कबीर साहेब के सामने ऐसी ही परिस्थिति थी लेकिन उनके अखंड आत्मविश्वास और साहस के सामने उनके रास्ते से पहाड़ को भी हट जाना पड़ा। पहाड़ उनका रास्ता रोक नहीं सका। कह सकते हैं कि कबीर साहेब की हिम्मत देखकर पहाड़ भी झुक गया। यहां पहाड़ से तात्पर्य सामाजिक, राजनैतिक एवं धार्मिक भेदभाव, विषमताएं और विघ्न-बाधाएं हैं।

जो हिम्मती आदमी होता है, उसको पहाड़ क्या करेगा? समुद्र क्या करेगा? आप में हिम्मत हो तो कोई बाधा आपको रोक नहीं सकती है। कबीर साहेब के जीवन को पढ़कर एक अद्भुत साहस मिलता है। लोग कहते हैं कि साहेब, हम क्या कर सकते हैं? हम तो बहुत साधारण आदमी हैं, हममें तो कोई शक्ति ही नहीं है, हम तो पढ़े-लिखे भी नहीं हैं, धनवान के घर पैदा नहीं हुए, गरीब के घर पैदा हुए हैं। हम क्या कर सकते हैं, हम तो बहुत सामान्य आदमी हैं। कबीर साहेब के पास क्या था? कबीर साहेब का जीवन हमें संदेश देता है कि तुम यदि अपने निश्चय पर अडिग हो जाओ तो कोई बाधा तुम्हें रोक नहीं पायेगी।

हमारा निश्चय कमजोर होता है, दृढ़ निश्चयता नहीं होती। पहली बात तो यह है कि हमें अपने लक्ष्य का ही ज्ञान नहीं है, मंजिल का पता नहीं है और अपने में साहस नहीं है, दृढ़ निश्चयता नहीं है, दृढ़ संकल्प नहीं है इसलिए हम हार जाते हैं। मंजिल का पता हो और दृढ़ निश्चय हो, मजबूत संकल्प हो फिर कोई भी बाधा मंजिल तक पहुंचने से रोक नहीं सकती है।

हम लोग उन महान सद्गुरु के अनुयायी हैं जो सिर से पैर तक फौलाद से बने हुए थे। इसका मतलब यह मत समझियेगा कि कबीर साहेब का शरीर लोहा से बना था। उनका व्यक्तित्व फौलादी था। सिर से पैर तक अटूट साहस और आत्मविश्वास उनके पास था। उनकी दृष्टि बड़ी विलक्षण दृष्टि थी। किसी भी बात की गहराई तक, किसी भी समस्या की गहराई तक वे तुरंत पहुंच जाते थे। रघुपति सहाय फिराक गोरखपुरी एक बहुत बड़े विद्वान हुए हैं। इलाहाबाद विश्वविद्यालय में वे पढ़ाते थे। उन्होंने लिखा है कि कबीर के जीवन को देखकर, कबीर की वाणी को पढ़कर ऐसा लगता है कि कबीर के पैर से लेकर चोटी तक आंखें ही आंखें थीं। जो कभी झपकती नहीं थीं। इसका अर्थ है कि कबीर साहेब अत्यंत सावधान और जागरूक पुरुष थे।

हमें भी वैसे ही जागरूक होना होगा, वैसे ही साहसी बनना पड़ेगा और जब हममें जागरूकता आ जायेगी तब हमें कोई रोक नहीं सकता है। कबीर साहेब का संदेश किसी एक वर्ग, किसी एक परंपरा, किसी एक

समाज, किसी एक जाति या किसी एक संप्रदाय के लिए नहीं है किन्तु उनका संदेश मानवमात्र के लिए है। क्योंकि वे स्वयं मानव थे। हम सब मानव बनकर ही पैदा हुए हैं। हम तो अपनी मानवता को भूल गये हैं और इसीलिए समाज में अनेक प्रकार से बंटवारा कर लिए हैं। बांटते-बांटते इतना बांट लिए कि हद हो गई। हिन्दुओं में तो और ज्यादा। हिन्दुओं में इतनी जात-पांत है कि हद है। जाति के भीतर जाति होती है। किसी ने कहा है कि जैसे केले के पात में पात होता है वैसे हिन्दुओं में जात में जात होती है।

एक उदाहरण कहा जाता है। एक गांव में एक ब्राह्मण रहते थे। उस ब्राह्मण को आसपास के गांवों से ब्रह्मभोज का निमंत्रण मिलता रहता था। ब्रह्मभोज का मतलब ही होता है उत्तम-उत्तम भोजन। उस ब्राह्मण के घर के बगल में ही एक मुसलमान रहता था जिसकी उस ब्राह्मण से मित्रता थी। वह मुसलमान देखता था कि ब्राह्मण का तो रोज निमंत्रण आता रहता है और वहां इसे बढ़िया-बढ़िया खाने को मिलता है। कभी मुझे भी ऐसे निमंत्रण में जाने का अवसर मिलता तो कितना बढ़िया होता।

एक दिन उसने अपने मन की बात ब्राह्मण मित्र से कही। ब्राह्मण ने कहा ठीक है तुम्हें भी ले चलूंगा। लेकिन एक शर्त है अपनी दाढ़ी साफ कराओ और थोड़ी चोटी बढ़ा लो। उन्होंने वैसा ही किया। कुछ दिनों बाद जब ब्रह्मभोज का निमंत्रण आया तब मुसलमान से पंडित जी ने कहा कि चलो एक ब्रह्मभोज में चलना है। ब्राह्मण ने उससे कहा कि एक नयी धोती पहन लो और कन्धे में जनेऊ डाल लो ताकि लोग समझें कि यह ब्राह्मण है और देखना कहीं कुछ बोलना मत। तुम मेरे साथ ही बने रहना। अलग हो जाओगे तो बात गड़बड़ा जायेगी। लेकिन मान लो हम दोनों बिछुड़ गये भीड़ में और तुमसे कोई पूछे कि तुम कौन हो, तो तुम कह देना कि मैं ब्राह्मण हूं और यदि पूछे कि कौन ब्राह्मण हो तो कह देना कि मैं गौड़ ब्राह्मण हूं।

दोनों भोज में गये। सब लोग बैठे थे। खाने का समय हुआ। इतने में किसी ने उस ब्राह्मण को कुछ काम से बुला लिया। आसपास बैठे अन्य ब्राह्मणों को संदेह हुआ कि इस नये ब्राह्मण को हमने कभी देखा नहीं है कहां से आया है, कैसे आया है तो एक ब्राह्मण ने उस मुसलमान से जो ब्राह्मण बनकर आया था, पूछा कि तुम कौन हो? उसने कहा कि मैं ब्राह्मण हूं? कौन ब्राह्मण हो? उसने कहा कि मैं गौड़ ब्राह्मण हूं। पूछने वाले ने फिर पूछा कि कौन गौड़ हो? तब उसने कहा—या अल्लाह! गौड़ में भी और। कहने का अर्थ है कि हिन्दुओं में जाति के अंदर अनेक जातियां हैं।

यह सारा बंटवारा प्रकृति की ओर से नहीं है। परमात्मा की ओर से, सत्य की ओर से नहीं है। यह सारा बंटवारा चालाक लोगों की ओर से है। लोगों ने वास्तविकता को समझा नहीं और इसलिए बांटते-बांटते इतना बांट लिया है कि कहीं कोई मेल नहीं रह गया है। इसलिए कबीर साहेब का संदेश है कि तुम मनुष्य बनकर पैदा हुए हो। अपनी मनुष्यता को समझो और अपनी मनुष्यता को समझकर अन्य मनुष्यों के साथ मनुष्यता का व्यवहार करो।

यह सोचो कि मेरा दिल क्या चाहता है। हर आदमी यह सोचे कि मेरा दिल क्या चाहता है? मैं क्या चाहता हूं? मैं यही चाहता हूं कि मैं जहां जाऊं कोई मेरा अपमान न करे, कोई मुझे दुख न दे, कोई मुझे तकलीफ न दे। तो जैसे मेरा दिल चाहता है वैसे ही दूसरे आदमी का दिल भी चाहता है। इसलिए जानबूझकर कभी दूसरे का अपमान न करें, अपने स्वार्थ के लिए किसी को पीड़ा न दें, कभी किसी को तकलीफ न दें किन्तु जितना बन सके दूसरों को आदर-सम्मान दें और जो बन सके सुख दें, सेवा करें, सहयोग करें। यही मनुष्यता है।

हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई ये सब नाम हैं। इनमें हकीकत नहीं है। एक हिन्दू भी यही चाहता है कि मैं जहां जाऊं लोग मेरा सम्मान करें, मेरा अनादर-अपमान न करें, मुझे सुख-सुविधा दें। यही मुसलमान चाहता है, यही ईसाई-सिक्ख चाहता है, यही ब्राह्मण चाहता है और यही जिसे आप शूद्र कहते हैं वे भी चाहते हैं। मूल बात में अंतर नहीं है, मूल बात सबकी एक है।

हिन्दू मंदिर में जायेंगे, मुसलमान मस्जिद में जायेंगे, ईसाई गिरजाघर में जायेंगे और अपनी-अपनी उपासना पद्धति के अनुसार पूजा-पाठ करेंगे। लेकिन हिन्दू मंदिर से निकला, मुसलमान मस्जिद से निकला, ईसाई गिरजा से निकला और तीनों को प्यास लगी तो तीनों को क्या चाहिए? तीनों को पानी चाहिए। भूख लगने पर भोजन चाहिए। रोग लगने पर तीनों को दवा चाहिए। आवश्यकता तो तीनों की एक ही है।

किसी हिन्दू को जब कोई बीमारी होती है या किसी मुसलमान को कोई बीमारी होती है और वे डाक्टर के पास जाते हैं तो डॉक्टर जाति के आधार पर इलाज नहीं करता है बल्कि यह पूछता है कि आपको तकलीफ क्या है? यदि हिन्दू डॉक्टर के पास गया है तो उसकी दवा अलग होगी और यदि मुसलमान को भी वही बीमारी है तो उसकी दवा अलग होगी ऐसा नहीं है। क्योंकि हिन्दू और मुसलमान दोनों मनुष्य हैं। ऐसे ही कबीरपंथी भी मनुष्य हैं, वैष्णव भी मनुष्य हैं, रामोपासक भी मनुष्य हैं तो देवी पूजने वाले भी मनुष्य हैं।

हम सब मनुष्य हैं। सब अपनी मनुष्यता को समझें और अपनी मनुष्यता को समझकर अन्य लोगों के साथ मनुष्यता का व्यवहार करें यही कबीर साहेब का पहला संदेश है मानवमात्र के लिए। जाति-पांति के आधार पर किसी को छोटा मत मानो और किसी को बड़ा मत मानो। कर्म देखो कि किसका कर्म कैसा है। जिसका कर्म सही है, आचरण सही है, चरित्र सही है, वह व्यक्ति बड़ा है और वह व्यक्ति पूजनीय है और जिसका चरित्र सही नहीं है, कर्म सही नहीं है, आचरण सही नहीं है, वह व्यक्ति कहीं भी पैदा हुआ हो, वह बड़ा नहीं हो सकता और पूजनीय नहीं हो सकता है।

आप थोड़ा और विचार करें। मान लो आपके गांव में एक ब्राह्मण कहलाने वाला रहता है और आपके गांव में जिसे आप चमार कहते हैं, वह भी रहता है। जाति के हिसाब से लोकमान्यतानुसार ब्राह्मण सबसे बड़े होते हैं और जिसे चमार कहा जाता है वह छोटे होते हैं। परन्तु जिसे आप ब्राह्मण कहते हैं वह शराबी है, कुसंग के कारण उसमें चोरी करने की आदत हो गयी है। इतना ही नहीं उसका चरित्र भी गड़बड़ है, वह परायी बहू-बेटियों को प्रायः छेड़ता रहता है तो क्या आप चाहेंगे कि वह ब्राह्मण आपके घर में आये और आपकी बहू-बेटियों से घुलमिलकर बात करे।

दूसरी तरफ वह व्यक्ति जिसे आप चमार कहते हैं वह बहुत सज्जन है, ईमानदार है, सुशील, सेवा-परायण है, जीवन में किसी प्रकार का कोई दोष नहीं है तो आप यही चाहेंगे कि मेरा बेटा उनसे जाकर मिले क्योंकि यदि मेरा बेटा उसके पास बैठेगा तो उसे अच्छी सीख मिलेगी। पूजनीय कौन हुआ? जाति पूजनीय हुई या कर्म पूजनीय हुआ? पूजनीय तो चरित्र होता है। इसलिए जाति को महत्त्व न दें, चरित्र को, आचरण को महत्त्व दें। कहा गया है—

कृतेन ही भवेदार्यो न धनेन न विद्यया: ।

ऋषियों और महर्षियों ने कहा कि आदमी धन और विद्या से बड़ा नहीं होता है किन्तु कर्म से बड़ा होता है। यह भी कहा गया है कि—

आचारहीनः न पुनन्ति वेदाः ।

जो चरित्रहीन व्यक्ति है उसको वेद भी पवित्र नहीं बना सकते हैं। इसलिए चरित्र की उज्ज्वलता पर, आचरण की उज्ज्वलता पर, कर्म की उज्ज्वलता पर जोर देने की आवश्यकता है। जिसका चरित्र बड़ा है, आचरण बड़ा है वह व्यक्ति बड़ा होता है चाहे वह किसी भी जाति में पैदा हुआ हो।

अतः जाति को महत्त्व न दें। एक आदमी ने कहा कि ब्राह्मण चाहे जैसा करता हो वह बड़ा ही होगा और जिसे आप शूद्र कहते हैं वह चाहे जैसा पवित्र आचरण करे परन्तु वह छोटा ही होगा। सोना यदि टट्टी में पड़ा रहे तब भी उसकी कीमत नहीं घटेगी। इसलिए ब्राह्मण चाहे भ्रष्ट हो वह बड़ा ही होगा।

मैंने उससे कहा—क्या इस बात को आप मानते हो। उसने कहा—हां, मैं मानता हूं। ब्राह्मण चाहे जैसा कर्म करे वह पूजनीय होता है। मैंने कहा कि फिर सोच लो। उन्होंने कहा कि मैंने अच्छी तरह से सोच लिया है। मैंने कहा कि यह बताओ रावण तो ब्राह्मण था क्या

तुम उसकी पूजा करते हो। बताओ रावण के कितने मंदिर बने हैं? रावण के लिए कहा जाता है—

उत्तम कुल पुलस्त्य कर नाती।
शिव विरंचि पूजेऊ बहु भांती॥

ब्रह्मा का बेटा है पुलस्त्य, पुलस्त्य का बेटा है विश्रवा और विश्रवा का बेटा है रावण। सीधे ब्रह्मा से रावण का संबंध जुड़ा है। यदि चरित्रभ्रष्ट होने पर भी ब्राह्मण कहलाने वाला व्यक्ति बड़ा है तो भारत में रावण के मंदिर बनाओ और रावण की पूजा करो और राम के मंदिर को ले जाकर गंगा में डाल दो। राम तो क्षत्रिय हैं और रावण ब्राह्मण। क्षत्रिय ब्राह्मण से छोटा होता है।

इसलिए जाति बड़ी नहीं होती है किन्तु चरित्र बड़ा होता है। सद्गुरु कबीर यही सीख देते हैं। वे कहते हैं—

कारे बड़े कुल उपजे, जोरे बड़ी बुधि नाहि।
जैसा फूल उजारिका, मिथ्या लगि झरि जाहिं॥

यदि बड़ी बुद्धि नहीं है तो बड़े कुल में उत्पन्न होने से क्या होता है। जंगल में अनेक प्रकार के फूल खिलते हैं और खिलकर मुरझाकर गिर जाते हैं उनका कोई उपयोग नहीं होता है। इसलिए बड़ी जाति में पैदा होने मात्र से कुछ नहीं होता जब तक चरित्र और आचरण बड़ा नहीं होगा। इसलिए अपने कर्म को बड़ा बनायें।

सद्गुरु कबीर साहेब का पहला संदेश यही है कि मनुष्य केवल मनुष्य है। मनुष्य बनें और अन्य लोगों के साथ मनुष्यता का व्यवहार करें। जाति के आधार पर किसी को छोटा-बड़ा न समझें और किसी का अपमान न करें।

उनका दूसरा संदेश है कि सुख को, शांति को, आनंद को, मोक्ष को, परमात्मा को बाहर मत खोजो किन्तु समझो कि मोक्ष किसे कहते हैं, परमात्मा किसे कहते हैं और आनंद कहां है? लोग नाम सुन लिए हैं मोक्ष का, आनंद का, परमात्मा का और बाहर भटकते जा रहे हैं। किसी ने कह दिया कि गंगा चले जाओ वहां परमात्मा मिल जायेगा; कैलाश, बद्रीनाथ चले जाओ वहां परमात्मा मिल जायेगा; द्वारिका, जगन्नाथ, रामेश्वरम् चले जाओ वहां परमात्मा मिल जायेगा। किसी ने कहा तो आप सुनकर भागने लग गये। इससे काम नहीं बनेगा।

लोग सुन-सुनकर भ्रम में पड़ जाते हैं, विचार नहीं करते। कबीर परिचय में श्री गुरुदयाल साहेब ने एक साखी कही है—

कबीर काहू अस कही, कान काग लिए जाय।
कान न टोवे बावरा, व्याकुल दहुं दिस धाय॥

एक कम समझदार आदमी था। किसी ने उसे दिया कि तुम्हारे कान को कौआ लेकर जा रहा है। वह अपने कान को बिना टटोले ही कौआ के पीछे भागने लगा। हम लोग भी ऐसे हैं। किसी ने कह दिया कि प्रयागराज में परमात्मा मिलेगा, बस दौड़ पड़े प्रयागराज की तरफ। विचार किये ही नहीं कि सचमुच में मिलेगा या नहीं मिलेगा। यदि प्रयागराज में परमात्मा मिलता तो प्रयागराज वालों को मिल गया होता। परमात्मा बाहर मिलेगा यह एक भ्रम है, परमात्मा तो बिछुड़ा ही नहीं है तो उसकी खोज क्यों की जाये? वह मिलेगा कैसे? जो चीज अलग हो, बिछुड़ गयी हो वह चीज खोजने पर मिलेगी।

दुनिया में सब कुछ बिछुड़ सकता है, लेकिन परमात्मा बिछुड़ नहीं सकता है। वह बिछुड़ने की चीज ही नहीं है परमात्मा तो आपका स्वरूप है। कबीर साहेब ने कहा है—

ज्यों तिल माहीं तेल है, ज्यों चकमक में आग।
तेरा साईं तुझ में, जाग सके तो जाग॥
कस्तूरी कुण्डल बसै, मृगा ढूढ़ै बन माहिं।
ऐसे घट-घट राम है, दुनिया जानत नाहिं॥

मृगा की नाभि में ही कस्तूरी होती है और सुगंध उसको वहीं से आ रही है। मृगा सोचता है कि यह सुगंध कहीं बाहर से आ रही है और मृगा जंगल-जंगल कस्तूरी की खोज में भटकता रहता है। जितना भटकता है कस्तूरी कहीं मिलती नहीं। ऐसे ही राम सबके भीतर

बैठा हुआ है, परमात्मा सबके भीतर बैठा हुआ है। भीतर है ऐसा कहना भी एक तरीका है, हर व्यक्ति स्वयं राम रूप है, खुद परमात्मारूप है, स्वयं भगवतरूप है। अनुभव क्यों नहीं होता है? अनुभव इसलिए नहीं होता है कि मन बाहर भटक रहा है, मन में अनेक प्रकार की कामनाएं हैं, तृष्णाएं हैं, वासनाएं हैं। ये जो मन की इच्छाएं-वासनाएं हैं, यही परमात्मा की प्राप्ति में बाधक हैं। जीव तो शुद्ध रूप है ही, अपनी शुद्धता का वह ख्याल नहीं कर पाता और संसार की तरफ आकर्षित हो जाता है और फिर आकर्षित होकर दुनिया के भोगों में डूब जाता है। इसलिए अपने परमात्मा को समझ नहीं पाता। कबीर साहेब कहते हैं—

चींटी चावल ले चली, बीच में मिल गयी दाल।
कहहिं कबीर संशय पड़ा, एक ले दूजी डाल॥

चींटी चावल लेकर जा रही थी इतने में दाल दिखाई पड़ गयी। वह रुककर सोचने लगी कि चावल को लूं या दाल को लूं। इतने में कबीर साहेब वहां पहुंच गये। उन्होंने देखा कि चींटी तो संदेह में पड़ी है तो कबीर साहेब चींटी को सुनाकर कहते हैं कि हे चींटी! 'एक ले दूजी डाल' तुम एक ही ले सकती हो, या तो चावल ले सकती हो या दाल ले सकती हो। दोनों को लेकर चल नहीं सकती।

अर्थ है कि यह जीव शुद्धता को लेकर चला था लेकिन बीच में माया मिल गयी। माया को देखकर यह लोभ में पड़ गया। माया में बड़ा आकर्षण होता है, खिंचाव होता है और जीव लोभ में पड़ जाता है। जैसा कि साहेब ने बीजक की पहली साखी में कहा है—

जहिया जन्म मुक्ता हता, तहिया हता न कोय।
छठी तुम्हारी हौं जगा, तू कहां चला बिगोय॥

जब तुम्हारा जन्म हुआ था तब तुम मुक्त थे, तुम्हारे पास कोई बंधन नहीं था। आदमी जब जन्म लेता है तब मुक्त होकर जन्म लेता है क्योंकि जन्म लेने वाला बच्चा सारे दोष-दुर्गुणों से परे होता है। उसके जीवन में कोई दोष नहीं होता। बच्चा बिल्कुल साफ-पाक होता है। इसलिए कहा जाता है कि वह तो बाल भगवान है। हम अपने बचपन की शुद्धता को भूल गये हैं। ज्यों-ज्यों बड़ा होते गये, समझदार बनते गये, उतना ही दुनिया में डूबते चले गये। माया ने हमें सब तरफ से घेर लिया है और हम अपने परमात्मस्वरूप को भूल गये हैं। साहेब कहते हैं कि यदि तुम माया का त्याग कर दो। लोभ, मोह, इच्छा और कामना का त्याग कर दो तो तुम परमात्म स्वरूप बन सकते हो, परमात्मरूप हो ही। साहेब ने कहा है—'घूंघट का पट खोल रे तोको पीव मिलेंगे।' घूंघट का परदा हटा दो तो तुम्हें परमात्मा मिल जायेगा। यह घूंघट का परदा क्या है? अविद्या, मोह, वासना, इच्छा, कामना, तृष्णा यही परदा है। जितना हम दुनिया में डूबेंगे उतना ही हम परमात्मा से दूर होते जायेंगे। यद्यपि जब तक शरीर है तब तक दुनिया में रहना होगा। दुनिया के लोगों से व्यवहार करना होगा, दुनिया की वस्तुओं का उपयोग करना होगा। आप कहां जाओगे? दुनिया में रहें, लोगों के साथ व्यवहार करें, वस्तुओं का उपयोग करें। किन्तु सावधानी इतनी बरतें कि लोगों के साथ व्यवहार करते हुए भी कहीं राग-द्वेष न बनने पाये, वैर-विरोध न बनने पाये। सबके साथ प्रेमपूर्वक व्यवहार करें। जैसे यात्रा में जाते हैं वहां अनेक व्यक्ति मिलते हैं, सबसे हंसते-बोलते हैं, एक साथ खाते-पीते हैं, एक दूसरे का सहयोग करते हैं लेकिन वहां पर कोई किसी से वैर या मोह नहीं बनाता।

यह समझ लें कि हमारा यह जीवन भी एक यात्रा है। इसलिए सबके साथ प्रेम का व्यवहार करें, सबकी सेवा करें, किन्तु कहीं मोह या वैर न बनायें, कहीं राग-द्वेष न बनायें।

खाना-पीना पड़ेगा, मकान में रहना पड़ेगा लेकिन लोभ न करें। लोभ बढ़ेगा तो पाप किये बिना रहेंगे नहीं और पाप होगा तब परमात्मा अलग चला जायेगा। हम उसे भूल जायेंगे और इसके परिणाम में दुख सहन करना पड़ेगा।

जब तक जीवन है लोगों के साथ सुंदर व्यवहार करें और जब तक जीवन है तब तक पदार्थों का उपयोग करें। लोभ और मोह से अपने आपको बचाकर रखें। ये लोभ और मोह ही परदा हैं जिनके कारण से परमात्मा के दर्शन नहीं हो रहे हैं। लोभ-मोह का परदा फट

जायेगा तो परमात्मा का साक्षात्कार हो जायेगा। परमात्मा तो आपका अपना आपा है, स्वरूप है। खुद को जो पहचान लिया उसने परमात्मा को पहचान लिया। जिसने खुद को नहीं पहचाना वह परमात्मा को भी पहचान नहीं सकता। सद्गुरु कबीर का संदेश है कि तुम्हारा मोक्ष, तुम्हारा परमात्मा, तुम्हारा भगवान तुमसे अलग नहीं है। इसलिए परमात्मा को, भगवान को पाने के लिए भटको मत। काम यह करना है कि जीवन में जो बुराइयां आ गयी हैं, दोष आ गये हैं, मन में अनेक प्रकार के जो विकार आ गये हैं उन विकारों को सेवा, संयम और साधना द्वारा दूर कर दें। जब सेवा, संयम और साधना द्वारा चित्त दर्पण के समान साफ हो जायेगा तब आत्मसाक्षात्कार हो जायेगा और आत्मसाक्षात्कार होना ही परमात्मा का मिलना है, भगवान और मोक्ष का मिलना है। मोक्ष तो आपका स्वरूप है। बंधन कट गये तो आप मुक्त रूप रह गये। इसलिए अपनी वास्तविकता को समझें और बाहर भटकना-दौड़ना, लोभ-मोह में पड़ना, इच्छा-कामना के पीछे भागना बंद करें। इसको यदि बंद कर लिए बस जहां जाना था वह मंजिल मिल गयी।

सद्गुरु कबीर का संदेश एकदम स्पष्ट और निराला है। उनकी एक-एक बात, एक-एक साखी पर घंटों विचार कर सकते हैं। उन पर विचार कर आचरण कर लें तो पूरा कल्याण हो सकता है। गुजरात में नड़ियाद एक जगह है वहां पर एक बहुत बड़े संत हुए हैं श्री संतराम जी महाराज। उन्होंने कबीर साहेब की प्रशंसा करते हुए कहा है—आधी साखी कबीर की, कोटि ग्रंथ करि जान। संतराम जग झूठ है, सार शब्द पहिचान।

संतराम जी महाराज कहते हैं कि कबीर साहेब की आधी साखी करोड़ों ग्रंथ के समान है। कबीर साहेब की आधी साखी पर विचार कर लो तो काम बन जायेगा। संतराम जी महाराज कहते हैं कि संसार का सारा व्यवहार झूठा है। एक दिन ऐसा आयेगा कि संसार और हमारा संबंध नहीं रह जायेगा। अपने-अपने माने हुए परिवार, कुल-कुटुम्ब, मठ-आश्रम, गुरु-शिष्य-शाखा का कोई संबंध रह नहीं जायेगा, सब छूट जायेगा। इसलिए दुनिया में कहीं मोह न करें। किन्तु जो सार शब्द है, ज्ञान की वाणी है, अपना स्वरूप है उसको पहचानें। अपने स्वरूप को पहचान कर, ज्ञानपूर्वक जीवन जीयें और सबके साथ प्रेम का व्यवहार करें। सद्गुरु कबीर का संदेश प्रेम का संदेश है। इसलिए उन्होंने कहा कि 'ढाई आखर प्रेम का पढ़े सो पंडित होय' जो प्रेम के ढाई आखर को पढ़ता है वह पंडित होता है। जिसका जीवन प्रेममय हो गया उससे किसी को तकलीफ होगी ही नहीं। इसलिए व्यवहार में सबके साथ प्रेम का व्यवहार करें और अपने स्वरूप को जानकर अपने स्वरूप में स्थित हों यही कबीर साहेब की वाणियों का सार है। ऐसा करना ही कबीर साहेब के प्रति सच्ची श्रद्धांजलि अर्पित करना होगा।

—धर्मेन्द्र दास

भेष को देखि के कोई भूलो नहीं, भेष पहिरे कोई सिद्ध नाहीं।
काम औ क्रोध मद लोभ माहीं घने, सील और साँच संतोष नाहीं॥
कपट के भेष तें काज सीझे नहीं, कपट के भेष नहिं राम राजी।
कहैं कबीर इक साँच करनी बिना, काल की चोट फिर खाइगा जी॥
कहत बैराग औ राग छूटै नहीं, पाँच को राचि करि साँच खोया।
इन्द्री स्वारथ को सबद अनुभव कथै, पंथ को बाद करि जीव छोया॥
नाम निरगुन कहै रहै सरगुन मही, सिष्य साखा की भूख गाढ़ घेरी।
कहैं कबीर जब काल गढ़ घेरि हैं, कौन ह्वै जीव की गति तेरी॥

कबीर की शक्ति

लेखक—श्री सुकन पासवान 'प्रज्ञाचक्षु'

कबीर की पहली और आखिरी शक्ति है—सत्य। कहावत है—"घी का लड्डू टेढ़ो भला।" कबीर ने टेढ़े-मेढ़े जैसे भी कहा, क्या सत्य को छोड़कर और कुछ कहा! कबीर को छोड़कर आज तक दूसरा एक भी ऐसा संत, महात्मा या मनीषी नहीं हुआ जिसका कोई न कोई कथन विवाद या पक्षपात का शिकार नहीं हुआ हो। एकमात्र कबीर ऐसे व्यक्ति हैं जिनका आदि से लेकर अंत तक एक पद क्या एक शब्द भी संदेह या संशय के कठघरे में नहीं घिरा। वस्तुतः यह शोध एवं विवेचन का विषय है कि कबीर में यह शक्ति कैसे और क्यों थी। उद्‌भट से उद्‌भट विद्वान संभलकर कहते-कहते या लिखते-लिखते कभी न कभी बेलीक हो ही जाते हैं। लेकिन कबीर ने जब से, जहां भी, जो कुछ कह दिया वह अकाट्य, असंदिग्ध तथा अमर हो गया। क्यों? कबीर के शब्दकोश में एक ही शब्द था, सत्य। और सत्य शब्द से जो कुछ कहा या लिखा जाएगा, वह संदिग्ध या पक्षपातपूर्ण हो ही नहीं सकता।

तभी तो कबीर ने कहा—

"साँच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप।
जाके हिरदै साँच है, ताके हिरदै गुरु आप॥
साँचे साप न लागई, साँचे काल न खाय।
साँचे को साँचा मिले, साँचे माहिं समाय॥
जाकी साँची सुरत है, ताका साँचा खेल।
आठ पहर चौंसठ घरी, सांई सेती मेल॥
साँच बिना सुमिरन नहीं, प्रेम बिन भक्ति न होय।
पारस में परदा रहै, कंचन केहि विधि होय॥
साँचे कोई न पतीआई, झूठे सब पतिआय।
गली-गली गोरस फिरै, मदिरा बैठि बिकाय॥
जाके बोली बंध नहिं, साँच नहीं मन माहि।
ताके संग न चालिए, छाड़ै पैड़े माहि॥
हम बासी उस देश के, जहाँ जाति बरन कुल नाहिं।
शब्द मिलावा होय रहा, देह मिलावा नाहिं॥"

कबीर के उक्त कथनों में सत्य को छोड़कर और क्या है? प्रकृतिवासियों के लिए भी और प्रकृतिपार जाने वाले जिज्ञासुओं के लिए भी कबीर ने एक ही तरह की बात कही। कोई भेदभाव नहीं। कोई लाग-लपेट नहीं। क्यों कहा ऐसा? क्योंकि उनके शब्दकोश में सत्य को छोड़कर दूसरा शब्द था कहां! तो भेद-विभेद, छल-छद्म की बात वे कैसे करते?

संस्कृत के एक श्लोक में कहा गया है कि सत्य बोलना चाहिए, सत्य को प्रिय ढंग से बोलना चाहिए और सत्य को अप्रिय ढंग से नहीं बोलना चाहिए। कबीर इस श्लोक के मात्र ऊपरी अर्द्धाली से सहमत थे। वे कहते थे सत्य बोलो। सत्य प्रिय नहीं होता है। इसलिए सत्य को प्रिय ढंग से कहने का नाटक मत करो। सत्य तो कड़वा-कठोर होता है। उसे मधुरूप में नहीं कहा जा सकता। तभी तो कबीर कहते हैं—

"जो तुम ब्राह्मणब्राह्मणि जाया, आन बाटते काहे न आया।
जो तुम तुरूक तुरूकनी जाया, पेटहि काहे न सुनति कराया॥
कारी पियरी दूहहू गाई, ताकर दूध देहू बिलगाई।
छाड़ कपट नर अधिक सयानी, कहैं कबीर सत्य शब्दसमानी॥"

क्या कबीर का यह कथन सत्य नहीं है? सत्य है। लेकिन मीठा कहां है। इसलिए नहीं है कि सत्य मीठा होता नहीं है। कबीर क्या कहते? जब सत्य मीठा होता ही नहीं है तो मीठा कैसे कहते? इसलिए कबीर को किताबों में वर्णित सिद्धांतों की चिंता नहीं थी। वे सिद्धान्त के जंगल में जाते तो भटक-भटक कर भूत हो जाते। उन्होंने ऐसी गलती नहीं की, केवल अपने शब्दकोश का सहारा लिया। जहां केवल सत्य था। इसलिए सर्वत्र, स्वतंत्र होकर सत्य कहा।

कबीर की दूसरी शक्ति है निर्वैरता। कहने के लिए इसे दूसरी शक्ति कहा जा रहा है। वस्तुतः निर्वैरता सत्य की सहचरी है। जो सत्यवादी नहीं होगा, वह निर्वैर नहीं हो सकता। कबीर अपनी वाणियों में सभी धर्मों से वैर

मोल लेते हुए प्रतीत होते हैं। सब की बखिया उधेड़ते हुए प्रतीत होते हैं। लगता है उनका सभी धर्मों से, सभी धर्मावलंबियों से जन्मजात वैर है। लेकिन तिलमिलाने वाले, छटपटाने वाले, गड़गड़ाने वाले, हुंकारने वाले कोई भी कबीर का कुछ बिगाड़ नहीं पाते हैं। सब ज्वार की तरह उफनते हैं और भाटा की तरह शांत हो जाते हैं। क्यों? क्योंकि धीरे-धीरे धूर्त मान लेते हैं और मूर्ख जान लेते हैं कि कबीर किसी से वैर की बात नहीं करता है, सबको निर्वैर भाव से बरतता है, तो कबीर दोषी कहां हैं! दोषी तो हमारी दृष्टि है जो सत्य को नहीं देख रही है। चोर तो हमारे भीतर है जो निर्वैर नहीं होने देता है।

कबीर ने अपनी शक्ति के रूप में निर्वैरता को ही पसंद क्यों किया? प्रश्रय क्यों दिया? क्योंकि वे जानते थे कि कीचड़ से कीचड़ साफ नहीं होता, उसी तरह वैर से वैर शांत नहीं होता। यह तो निर्वैर से प्रशमित होता है, तो जब तक समाज विभेद रूपी वैर से ग्रसित है तब तक सामाजिकों में निर्वैरता की स्थापना कैसे होगी। नमाज के लिए मस्जिद में बादशाह बाद में आता है तो बाद में ही स्थान ग्रहण करता है फिर यह व्यवस्था हिन्दू धर्म में क्यों नहीं है? वास्तविक तथा सात्विक धर्म तो वह है जो अपने अनुयायियों को सहिष्णु बना दे। जो धर्म निष्कामता के लिए है, कामनाओं की वृद्धि के लिए नही; विराग के लिए है, राग के लिए नहीं; सांसारिक लाभों को घटाने के लिए है, बढ़ाने के लिए नहीं; उद्यम के लिए है, प्रमाद के लिए नहीं; अच्छाई के लिए है, बुराई के लिए नहीं; वही धर्म है, विनय है, शास्ता है, संदेश है। धर्म अंधानुकरण करने की सलाह नहीं देता, बल्कि सर्वत्र तत्त्व के गुण-दोषों के विवेचन करने के उपरांत ही उसे स्वीकार करने का उपदेश देता है।

कबीर अभ्युदय और निःश्रेयस की प्राप्ति के लिए सत्संगति तथा स्वच्छ आचरण को आवश्यक बताते हैं। कहते हैं—'सज्जनों की सत्संगति से श्रेयत्व की प्राप्ति होती है। सज्जनों के कर्म को अपनाकर मनुष्य समाज में प्रकाशित होता है तथा सुगति को प्राप्त करता है। अभ्युदय की प्राप्ति के लिए ज्ञानियों का आश्रय अनिवार्य है, पापियों और पामरियों का नहीं। पूजनीयों का संपूजन, प्रतिरूपदेश, संवाद, पूर्वकृत पूण्यता, आत्म सम्यक प्रणिधि, बहुश्रुतता, विनयिता, धर्मचर्या, ज्ञातिसंग्रह, अनवद्य कर्म तथा अप्रमाद से अभ्युदय एवं निःश्रेयस संभव है। सात्त्विक चिंतनधारा में अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष, ये चार पुरुषार्थ माने गए हैं और इन चारों पुरुषार्थों का अंतर्वेशन अभ्युदय और निःश्रेयस में हो जाता है। जिस आचरण से व्यक्ति का अज्ञान नष्ट हो जाता है, वही धर्म, निर्वैरता तथा विमल आचरण है।

इस निर्वैरता को कबीर ने दूसरे तरह से भी प्रतिपादित किया। कहा—

"जात नहीं जगदीश की, हरि जन की कहां होय।
जात पाँत के बीच में, डूब मरो मत कोय॥"

कबीर केवल आध्यात्मिक ही नहीं, बल्कि सामाजिक एकता और निर्वैरता के भी पोषक हैं। इसलिए अद्वैत चिंतन के साथ-साथ सामाजिक एकत्व, अपनत्व, समत्व तथा निजत्व की आवश्यकता पर भी उन्होंने अपनी रचनाओं में बल एवं प्रकाश डालना प्रारम्भ किया। ऊंच-नीच के कपोल कल्पित धारणाओं का खंडन प्रारम्भ किया। परतंत्रता की बेड़ी काटने का मंत्र पढ़ा। विभाजन पर विराम लगाने का प्रयास किया। यहां तक कि अपनी लाश के बंटवारे के झमेले का ही अद्भुत ढंग से समाधान प्रस्तुत कर एकत्व तथा सामाजिक समत्व की स्थापना का अनूठा उदाहरण प्रस्तुत किया। कबीर का यही समत्व धर्म उनके अखिलत्व का आधार है।

शोषण और स्वार्थ के रहते समरस समाज की स्थापना असम्भव है। जब तक भूखे बच्चे मां की हड्डी से चिपककर रात बिताते रहेंगे और श्वानों को एयरकंडीशन्स गाड़ी में घुमाया जाता रहेगा तब तक आदमी कुछ भी कहला सकता है, लेकिन आदमी नहीं। स्वार्थियों, शोषकों तथा क्लीव-कामियों को तभी तो चेताते हुए कबीर ने कहा—

"जहाँ काम तहँ नाम नहिं, जहाँ नाम नहिं काम।
दोनों कबहूँ न मिलै, रवि रजनी एक ठाम॥
नैनों काजर नाई के, गाढ़े बांधो केश।
हाथों मेंहदी लाइ के, बांघिनी खाया देश॥"

मंदिर और मस्जिद तथा गिरजा और गुरुद्वारा में बंटते मानव और उनके मन-मिजाज को सामाजिक-आध्यात्मिक सूत्र में सूत्रबद्ध-एकबद्ध करने के लिए कबीर को कठोर शब्दों में कहना पड़ा—"दिन भर रोजा रहत हैं, राति हनत हैं गाय' और "नाना रूप बरन एक कीन्हा, चारि वरण वै काहु न चीन्हा।" योगी, पंडित, संन्यासी, मौलवी, काजी, पादरी के वितंडावाद को धिक्कारते हुए कहा—

"चार वेद ब्रह्मा निज ठाना, मुक्ति का मर्म उनहू नहिं जाना।
हबी और नबी के कामा, जितने अमल सो बसै हरामा।"

कबीर की भाषा वैरी लगती है। कठोर लगती है। लेकिन निर्वैर का बीज इसी में छिपा है। मानवतावाद की इसी में प्रतिष्ठा है। सत्य का इसी में समाहार है और इसी विलगाव में अभिनव तथा अद्‌भुत लगाव का रस भरा है।

इंसानियत और ईमान सहज समगोत्रीय हैं। निर्वैरता के हमराही हैं। इसलिए कबीर जहां-जहां भी सत्य तथा निर्वैरता की बात करते हैं, वहीं-वहीं इंसानियत, ईमान, यहां तक कि ईश्वर तक मूर्तिमान प्रतीत होने लगते हैं। इसके कारण कबीर का मानवीय एवं सामाजिक चिंतन आध्यात्मिक विवेचन प्रतीत होने लगता है। स्थिति प्रकाश के उद्‌भव एवं अंत में अविभेद वाली हो जाती है। इसलिए कबीर को समझने के लिए उद्‌भव और अंत की पड़ताल करने के बदले मात्र कबीर के विचार की व्यापकता पर विचार करना समीचीन होगा। कबीर की शक्ति शाश्वत तथा समष्टिमूलक है, अतः उनका व्यष्टिमूलक अध्ययन बेवकूफी होगी।

कबीर की भक्ति

कबीर की निर्भ्रांत भक्ति को लेकर भी सर्वाधिक भ्रांति उत्पन्न की गई है। उन्हें ब्राह्मण या जुलाहा साबित करने का प्रयास भी मूलतः भक्ति को भ्रम में डालने के लिए किया गया है। कबीर को सीधे भक्त नहीं कहा गया न ही रहने दिया गया। उन्हें वैष्णव, सगुणोपासक, द्वैतवादी सिद्ध करने का सर्वाधिक प्रयास किया गया। उनके सिद्धान्तों, विचारों को भी वेद-वेदांत, नाथ, सूफी से प्रभावित बताया गया। कबीर की भक्ति बिरल या बेमिसाल थी इसको मानने को तो कोई तैयार ही नहीं था, क्योंकि वैसे धर्माधिकारियों को भक्ति की नहीं, अपने धर्म के ढकोसला को बचाने की चिंता थी। इसके दो सर्वप्रमुख कारण थे—स्वार्थ और निहितार्थ। धर्म विभाजन का धारदार औजार होता है। इस औजार से सत्य को हलाल करने तथा स्वार्थ को महफूज रखने में आसानी होती है। यदि कोई ब्रह्मास्त्र होता है शोषकों के हाथों में तो वह ब्रह्मास्त्र धर्म का औजार ही है। इसकी मार बेआवाज होती है तथा मारने वाला रक्षक-सा दिखता है। मरने वाला दुष्ट तथा मारने वाला संत दिखता है। शोषक दाता कहलाता है और शोषित ग्राहक। मृगमरीचिका सिन्धु और सिन्धु रेगिस्तान-सा दिखता है। नहीं तो कबीर की भक्ति को लेकर भांड़ों को इतनी भ्रांति क्यों होती।

धर्मधुरंधरों की इस धोखाबाजी तथा मूर्खता से वाकिफ थे कबीर। वे इसी वजह से प्रचलित पंथ, मत, संप्रदाय से पृथक रहते थे, आवाम को पृथक रखने का प्रयास करते थे और धोखाबाजों को भी खबरदार करते थे। उनका निहितार्थ बहुआयामी था। शोषकों को सावधान करना। धर्मांधों को धर्म का तत्त्व दर्शन कराना। भेड़ियों को भक्ति का मर्म बतलाना तथा भ्रमितों को दिशादर्शन कराना। साथ ही साथ धोखा की दीवार, प्रथा के पिलर, परंपरा के पहाड़, अंधविश्वास के अजायबघर, अज्ञान के अंधकार, माया की मीनार, स्वार्थ के शैल, विभाजन के बैरियर तथा बरबाद की विषुवत् रेखा को धूलधूसरित करना भी कबीर का प्रयोजन था। कबीर की एकल तथा अद्‌भुत विशेषता यह थी कि वे संतचित्त वालों के साथ-साथ शैतानी वृत्ति वालों का भी उत्थान तथा त्राण चाहते थे। इसलिए उनका प्रत्येक वैर निर्वैरता की स्थापना के लिए होता था और कबीर के इसी निहितार्थ में उनके धर्म का तत्त्वार्थ समाहित है।

कबीर की भक्ति सहज भक्ति है। सहज भक्ति क्या है? सहज, सरल, सब के लिए संभव, सर्वजनीन तथा

सर्वहितकारी भक्ति ही सहज भक्ति है। कबीर सभी धर्मों की असहजता तथा जटिलता को देख चुके थे। इससे भी अधिक वे इसकी निरर्थकता से व्यथित थे। इसलिए सभी धर्मों का पोल खोला और जो कबीर के धर्म के मर्म को समझे बिना उसकी व्याख्या करने के लिए बैताल हो रहे थे, उन्हें समझाते तथा लखाते हुए कहा—

"सहज सहज सब कोई कहै, सहज न चीन्हा कोई।
सहज सहज सहज मिलै, सहज कहावै सोई॥"

कबीर का स्वामी सहज है। वही सबका स्वामी है। सहज असहज होने से नहीं मिलता है। रोड पत्थर से ही बनता है लेकिन पत्थर रोड नहीं होता। रोड कहलाने के लिए पत्थर को अपने को सीधा और सहज बनाना पड़ता है।

प्रभु सहज है। वे धर्म के पहाड़ तथा अंधकार के बियाबान में भटकने से नहीं मिलते। वे तो उसे ही मिलते हैं जो अपनी सभी असहज वृत्तियों को छोड़कर सहज हो जाता है।

कबीर की भक्ति सर्वजन हितकारी तथा सहज है। इसलिए उन्होंने भक्ति के लिए सहजपथ (सहजयोग) के मार्ग का मार्गी बनने की सीख दी। वह किसी में किसी भी आधार पर विभेद नहीं करता। इसलिए उसके दरबार में जाने का मार्ग भी सहज है। कर्मकांड, मूर्तिपूजा, देव आराधना तथा पुस्तकीय ज्ञान के सहारे ईश्वर से साक्षात्कार असम्भव है। जरूरत जल मीनवत या दीप पतंगवत होने मात्र की है। मन के निर्मैल होते ही उस निर्मल चित सच्चिदानंद की अनुभूति सहज में ही हो जाती है। और तब भक्त की स्थिति हो जाती है—

"चित बिना चिंतन करें, मनन मना बिन होय।
करे विवेचन बुद्धि बिन, हंस मुक्ति महं सोय॥"

क्या है कबीर धर्म का मर्म?

कबीर का बाह्य तथा स्थूल व्यक्ति जुलाहा है। न कबीर कहीं इस पर बहस करते हैं और न प्रबुद्ध समाज को इससे बहस है। कबीर का व्यक्तित्व कर्म के सिक्तकणों से उपार्जित धर्म तथा मानवीकरण की चिंता करता है। यह मात्र कबीर के काल से ही नहीं, काल के साथ अवगुंठित मानव उपयोगी चिंतनधारा है जो निरंतर तथा चिरंतन है। कबीर का प्रेम (ईश्वर) पाहन में नहीं, मानव मन के मंदिर में निवास करने वाला है। कबीर ने तो खुद कह दिया "मसि कागज छुऔ नहीं" फिर उनकी भाषा की व्याख्या का औचित्य क्या है? हां, कबीर के भाव को पढ़िए, भावविभोर हो जाइएगा। क्या कंकड़-पत्थर चुंगित, मस्जिद में अल्लाह बसता है या निर्जीव पहाड़ में परमात्मा का दीदार सम्भव है जो बेकार के बकवास में बैताल बने हो—कबीर के इस यथार्थ का अध्ययन कीजिए। "ज्यों खर सू खर बंधिया, यूं बंधे सब लोई। जाके आतम दृष्टि है, सांचा जन है सोई॥" कबीर की उपादेयता इन्हीं चरित्रों के अंगीकरण से सम्भव है। कबीर कालजयी इसलिए हैं कि उन्होंने खुद के लिए कभी भी कुछ नहीं सोचा। उनका जो कुछ है समष्टि के लिए है। समाज व्याप्त समस्त बुराइयों तथा पापाचारों का कारण व्यक्ति को समष्टि पर अधिमान देना है। इससे निवृत्ति के लिए कबीर ने अपरिग्रह तथा त्याग का संदेश दिया। आवश्यकता इस सत्य को प्रकाशित करने की है।

जब-जब व्यक्ति खंडहर में तब्दील होता है, योग भोग की हवि बनने लगता है, दानवता अपने को दानवीरंगना कहने लगती है, सत्य के सूर्य को असत्य का अंधकार डसने लगता है, स्वार्थ वामन का रूप धारण करने लगता है और चतुर्दिक मोहनिशा का तांडव होने लगता है तब-तब कबीर जैसे कालजयी पुरुष मोह, माया और तृष्णा के त्रिभुज में कर्णरिखा बनकर उभरते हैं और इन त्रितापों को विलग-विलग कर आसुरी तंद्रा-निद्रा का भंजन करते हुए प्रेम रसधार मंडित मानव प्रेम की सरससलिला भागीरथी को धरावतीर्ण कर जाते हैं।

हमारा वर्तमान बरबादी, बेचारगी तथा बेचैनी के इसी चक्रव्यूह में घिरा छटपटा रहा है। हमें स्वार्थ तथा अहम् ब्रह्मास्मि् प्रवृत्ति ने क्लीव-कायर के साथ-साथ कर्मच्युत बना दिया है। व्यक्ति बंटते-बंटते अंग विशेष में सिमट गया है, गोया फैशन डिजाइनिंग का मॉडल हो। संचयवृत्ति की सुरसा ने हमारे सुख के सागर को सोख लिया है फिर भी हम सम्हलने को तैयार नहीं हैं। अब किसका फर्ज किसके प्रति क्या है, इसकी चर्चा

बेमानी हो गयी है। दूसरे शब्दों में फर्ज अपना वजूद खो चुका है। फर्ज ही जीवन का संविधान है। इसे जैसे शरीर के प्रति हम निबाहते हैं यदि उसी तरह समाज तथा स्रष्टा से प्रति निबाहें तो भवसागर सफलतापूर्वक तर जाएंगे—यही कबीर के धर्म का मर्म है।

"गढ़े देव को सब कोई पूजै, नित ही लावै सेवा।
पूरन ब्रह्म अखंडित स्वामी, ताको न जाने भेवा॥"

आज तो प्रेम का सर्वत्र अकाल पड़ा हुआ है। स्वार्थ की महामारी फैली हुई है। शोषण के डेंगू बुखार की व्याप्ति है तथा ईर्ष्या का कैंसेरस कीटाणु से सम्पूर्ण पर्यावरण प्रदूषित है। इन सभी प्राणघातक बीमारियों की महौषधि वैद्य कबीर के दोहा, शब्द, साखी तथा रमैनी रूपी संजीवनी बूटी के पोर-पोर में भरी पड़ी है। निर्विकार होकर इसके सेवन से निश्चय ही समाज व्याप्त समस्त बुराइयों का शिरोच्छेद होगा। इसके लिए कबीर के मौलिक चिंतनों पर चर्चा की आवश्यकता है।

यह भूलकर कि भोग एक सैनिक अभियान है और जो इसमें सरीक होता है वह आज न तो कल भागमभाग में कुचलकर मर ही जाता है। भोगमय जीवन के दोनों स्थलों पर वासनारूपी वेश्या का ही निवास होता है। इसलिए भागने की इच्छा होने पर भी पाप का घाव तो साथ लगा ही रहता है। कबीर इस भयंकर कर्मनशे से बचने के लिए सचेत करने वाले सौदागर हैं। वे कहते हैं भोग से भागो, योग को पकड़ो; इंगला, पिंगला, सुषुमना के सहारे इस पापसागर से तरकर मकरतार पकड़कर सुख के संगम त्रिवेणी में गोता लगाओ! खुद आनंदमय हो जाओ, जग को तदनुरूप बनाओ! धर्म और कर्म को रेखांकित करते हुए कबीर ने कहा कि—'जिस ईश्वर या अल्लाह की तुम बात करते हो उनके यहां न तो हिन्दू है और न मुसलमान, न ब्राह्मण है और न शूद्र, न मंदिर है, न मस्जिद, अतः अपने चरम को पहचानो और असत्य तथा नश्वर जगत की बनाई दीवारों को धराशायी करो!' इसलिए हिन्दुओं को उन्होंने पत्थर के बुतों से परहेज की शिक्षा दी तो मुसलमानों को भी मस्जिद के गुंबदों से अल्लाह को आवाज देने के विरुद्ध खरी-खोटी सुनाई। उन्होंने पाषाण के देवता की आराधना से बेहतर उस चक्की की भक्ति का संदेश दिया, जिसके कारण हमारी भूख मिटती है—'ना कुछ देखा हरी भजन में, ना कुछ देखा पोथी में। एक बात ही देखा संतो, जो देखा सो रोटी में॥'

इसी तरह धर्म को वे सप्ताह में एक या दो दिन किए जाने वाले कर्म के रूप में नहीं मानते। वे ये भी नहीं मानते कि क्रिया विशेष या मंदिर-मस्जिद के अंदर इसे क्रियान्वित किया जा सकता है। वे प्रत्येक सांस में धर्म को उतारना चाहते हैं। प्रत्येक कदम पर इंसानियत का राज्य चाहते हैं। वे ऐसे मनुष्य की कल्पना करते हैं, जो दो रूपों में नहीं हो। कबीर का धार्मिक व्यक्ति वह है जो प्रत्येक काम नीति अनुरूप करता है, जिसका प्रत्येक कदम इंसानियत की इबादत में उठता है।

कबीर समवेत रूप में जीवन के नैसर्गिक एवं सहज स्वरूप के प्रबल हिमायती तथा व्याख्याकार हैं। बनावटीपन के प्रत्येक परत से विलग कर व्यक्ति को परमतत्त्व से साक्षात्कार कराने वाले पथप्रदर्शक हैं तथा मनुष्य जीवन के उद्देश्य को निरूपित करने वाले बेमिसाल टीकाकार हैं। "सहज-सहज ही सहज मिले, सहज ही सहज स्वरूप। दुविधा में जो पड़ै, बिछड़े सहज अनूप॥" जीवन के प्रत्येक स्तर पर मानवीय सरोकार सम्बन्ध के नैसर्गिक प्रकृति को प्रतिपादित करने वाला कबीर से विलक्षण दूसरा व्यक्तित्व दुर्लभ है।

वस्तुतः कबीर अखिल विश्व के समस्त मानवों के लिए एकमात्र मानवहित चिंतन पर आधारित सभी तरह के विभेदों से रहित विश्व धर्म की स्थापना करना चाहते थे, क्योंकि उनका मानना था कि जब जन्म में भेद नहीं है तो धर्म में भेद का भी कोई आधार नहीं है।

कबीर छुआछूत, बलि, हिंसा, यज्ञ, तीर्थ, व्रत, खतना, मूर्ति उपासना आदि का विरोध इसलिए करते हैं क्योंकि यह सब भक्ति मार्ग के अवरोध के साथ-साथ अहंकार के सृजक तत्त्व हैं। अहंकार से कहने-सुनने को भले कुछ हो जाए किन्तु भक्ति और मुक्ति तो नहीं हो सकती है और कबीर तो मुक्तिकामी संत हैं। जात, अहंकार अथवा दैन्य के संकेतक हैं। जात के पांत में लगकर बेलाग चलना सम्भव नहीं है और भक्ति मार्ग

पर विरल और अजात का ही पदार्पण सम्भव है। इसलिए कबीर जातिवादियों के प्रबल विरोधी तथा अजातों की जमात के प्रणेता हैं।

संतशिरोमणिओं ने अपना नाम रामदास, तुलसीदास, नंददास, सुंदरदास, मलूकदास, सूरदास, नागरीदास, पुरंदरदास, कनकदास, रैदास आदि रखा और जातिगत उपाधियों का त्याग कर दिया। क्यों? क्योंकि जातिगत अभिमान भगवान का अपमान है। भक्त भगवान का अपमान कर या सह सकता है क्या? नहीं। तभी तो तुलसी ने मानस में कहा— "हम चाकर रघुवीर के पढ़ौ लिखौ दरबार, तुलसी अब क्या होहुगे नर के मनसबदार।" समता सीमाहीन समाज में ही सम्भव है। जाति समाज की सीमा है। जब तक यह यहां है, समता नहीं होगी। तो सदर के "संसद" में हम समान होने का क्या प्रमाण पत्र प्रस्तुत करेंगे।

जाति, कुल, गोत्र, वंश, वर्ग, रंग आदि अहंकार के द्योतक हैं। जाति-सीमा में बंद व्यक्ति ईश्वर तथा उसकी भक्ति को नहीं पा सकता, क्योंकि भगवान की शर्त है सबकुछ छोड़कर आओ। कुल सीमा, जाति सीमा, गोत्र सीमा के उल्लंघन के बाद ही समत्व का दर्शन सम्भव है। प्रभु के साम्राज्य में पद प्राप्त करने की कामना करने वालों को कबीर ने जाति त्याग की सीख दी। कोई भी राजा अहंकारी को पसंद नहीं करता। जब भौतिक राजा के समक्ष निरहंकारों का ही गुजारा है तो फिर प्रभु के साम्राज्य में उसे स्थान कैसे मिलेगा? अहंकारी का मन तो अपने में लगा रहता है, वह भगवत् उन्मुख कैसे होगा?

जाति भाव के कारण मनुष्य व्यापक से नहीं जुड़ सकता और भक्ति का तो लक्ष्य ही है व्यापक से जोड़ना। व्यापक ही ईश्वर का प्रतिरूप है, क्योंकि वह सबमें है। अर्जुन परिवार मोह के कारण ही विराटरूप को नहीं देख रहा था। उसी तरह कोई भी मनुष्य जाति मोह रहने तक विराट प्रभु को नहीं देख सकता। जब अर्जुन जाति धर्म, कुल धर्म, परिवार धर्म को छोड़कर दैन्य धर्म अथवा भक्ति धर्म को उन्मुख हुआ तभी उसे विराट के दर्शन हुए। भक्ति धर्म से ही मनुष्य जाति दोष से मुक्त हो सकता है। भक्ति व्यापक समाज के हित का द्योतक है। विश्वमानवता हित साधक है।

भक्ति स्वार्थ दृष्टि का निषेध करती है, क्योंकि भक्ति स्वार्थ नहीं परमार्थ है। इसलिए जाति नहीं, भक्ति चाहिए। भक्ति साधकों की जाति है—दासत्व। जो स्वयं दास है, उनमें भेदभाव कैसा? भगवान तो अपने सेवक में वास करता है। भगवान सेवक है। सेवक भगवान है, अस्तु! सेवक से भेद भगवान से भेद है। भक्त तो अनागरिक होते हैं। तो भला ऐसा अनागरिक जाति में क्यों विश्वास करेगा? इस सर्वहारा अनागरिक को जाति क्या देगी? इस सर्वहारा का अपना कुछ भी न होकर सबकुछ उसका है, क्योंकि वह विराट से जुड़ा है। भक्त ही तो भगवत संपत्ति का अमानतदार है।

भक्ति में जाति की अस्वीकृति का कारण कुछ लोगों की दृष्टि में बौद्ध-जैन प्रभाव है। किन्तु बुद्ध या महावीर हरिजन-गिरिजन तो थे नहीं फिर उन्होंने जाति व्यवस्था का विरोध क्यों किया? उन्हें तो क्षात्र, सिंह एवं जातक गर्व होना चाहिए था। लेकिन यहां भी वर्ण-व्यवस्था को स्वीकृति नहीं मिली। वह भी तब जब ये सम्प्रदाय ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास नहीं करते। अर्थात जब भौतिक जीवन में ही जाति-व्यवस्था को एड्स सदृश्य मानकर बुद्ध तथा महावीर ने अस्वीकार कर दिया तो भला भक्ति मार्ग में इसकी स्वीकृति सम्भव है क्या? इसीलिए कबीर ने दासत्व को ग्रहण कर समभाव को अंगीकार करने को इंगित किया। जाति की अस्वीकृति का असल कारण ही मानवतावादी है। जो बात बौद्ध एवं जैन के साथ थी वही भक्ति के साथ भी है। यह प्रसंग भक्ति में अजाति के महत्त्व का प्रतिपादक है। बुद्ध ने कहा भी—

"न जटाहि न गोत्तेहि न जच्चा होति ब्राह्मणो।
यम्हि स सच्चञ्च धम्मो च सो सुचि सो च ब्राह्मणो॥"

कबीर जीवन में अभ्युदय तथा निःश्रेयस् को अतिशय महत्त्व देते हैं। अभ्युदय का अर्थ ही होता है—विशेष रूप से उठना, उदय को, उन्नयन के चरमोत्कर्ष को अधिगत करना। उद्गमन में जो सर्वश्रेष्ठ उद्गमन है, उसे ही अभ्युदय की संज्ञा दी जा सकती है। और निःश्रेयस् का अर्थ है—अमृत, कल्याण, मंगल,

मोक्ष तथा निर्वाण को हस्तगत करना। इस प्रकार अभ्युदय एवं निःश्रेयस् का तात्त्विक अभिप्राय है सामाजिक, सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक दृष्टि से समुन्नयन एवं मंगल, कल्याण तथा निर्वाण की प्राप्ति। अतः साहब कहते हैं अभ्युदय की प्राप्ति के लिए अजात होकर क्रियामान कर्मों में संयम को अनिवार्य रूप से अंगीकार करो।

अहंकार शून्य कर्म तथा अजातवृति से ही व्यक्ति चेतना से संचेतित होता है तथा कर्मों को संपन्न कर सकता है। कर्म ही प्राणियों को हीनतत्त्व तथा प्राणीतल में बांटता है। लोक भी कर्म से प्रवर्तित है। गतिमान रथचक्र की आणि की तरह प्राणी कर्म से बंधा है। अकर्म से दुर्भाग्य तथा अभिमानरहित सुकर्म से सौभाग्य (मोक्ष) की प्राप्ति होती है। इससे स्पष्ट है कि लौकिक उत्कर्ष प्राप्ति हमें बंधन तथा जाति प्रवृत्ति करते हैं और लोकहित निःश्रेयस् की प्राप्ति में अहंकारशून्यता उत्प्रेत करता है। मंगलमय संकल्पों से जब मन भरा होता है तो किए गए कर्म शुभात्मक होते हैं। मन, वचन और कार्य का संबल मनुष्य की चेतना को निर्मल एवं अनाविल बनाता है। जहां-जहां मन तथा अहं निवारित होता है, वहां-वहां दुख नहीं होता। अतः मन को सभी स्थानों और विषयों से निवारित करने पर ही जीव सम्पूर्ण दुखों से मुक्त होता है।

इसीलिए भक्त संतों ने जातिनिवारण के उद्देश्य से सभी धर्मों की मूलभूत समानता तथा ईश्वर की एकता का उपदेश दिया और यह माना कि मनुष्य का गौरव उसके जन्म पर नहीं कर्म पर निर्भर होता है। उन्होंने धर्म में अधिक कर्मकांड की औपचारिकता और पुरोहितों की प्रधानतया के विरुद्ध आवाज उठाई और हर व्यक्ति की मुक्ति के उपाय के रूप में सहज भक्ति और आस्था पर जोर दिया। तभी तो इस काल से ही भक्ति भाव में हरिजन संतों के साथ-साथ आंडाल, अक्कमहादेवी और मीराबाई जैसी भक्ति महिलाएं संतों की कोटि में गिनी जाने लगीं। निर्विवाद रूप से कबीर ने समानता प्राप्ति के लिए लकवाग्रस्त सामाजिक मानसिकता पर तीक्ष्ण प्रहार किया और अजातों की जमात को समानता प्राप्ति के लिए जागरूक होने हेतु ललकारा।

कबीर कहते हैं—'साधुओं की जमात नहीं चलती है, यहां विरला ही पहुंच पाता है, क्योंकि भक्ति व्यक्ति साधना है, सामूहिक नहीं।' तुलसी और कबीर में यही मौलिक अंतर है—तुलसी समाज चाहते हैं, कबीर नहीं। समाज का चाहना ही वर्णव्यवस्था का कारण है। जैसे आजकल का राजदल हर चुनाव वर्णव्यवस्था के आधार पर लड़ता है। पद और प्रतिष्ठा जाति के आधार पर पाता है। वर्णाश्रित व्यवस्था प्रतिगामी व्यवस्था की जननी है।

भक्त भगवत शरणागत होने के कारण अजात होता है तथा उसमें केवल समता का भाव ही होता है। तभी तो भक्त प्रभु बंधन को छोड़कर किसी भी बंधन में बंधना नहीं चाहता। अजात की दृष्टि ही सार्वजनिक और सार्वभौमिक होती है। अचिंत्य, अजन्मा, विराट से सम्बन्ध के कारण उसके भव एवं घर के घेरे स्वतः टूट जाते हैं। तभी तो कहा गया है—

"नहिं हिंदू नहिं तुरक हम, नहिं जैनी रंगरेज।
सुमन संवारत रहत नित, अखिल बिहारी सेज॥"

कबीर का बिहारी (भगवान) अखिल व्यापक है। स्वभावतः वे एकमात्र अखिल धर्म की स्थापना चाहते हैं। एक के लिए अनेक की आवश्यकता बतलाने वालों को वे बौद्धिक षड्यंत्रकारी मानते हैं। विश्व का सभी मानव सम गुणधर्मी है, इसीलिए सबों का धर्म भी एक होना चाहिए। तत्त्वतः है भी लेकिन नाम-भ्रम के कारण लोग इसे भिन्न-भिन्न मानते हैं। कबीर इसकी मनाही करते हैं। कहते हैं, मार्ग एक है, मंजिल एक है और मालिक भी एक है। इसलिए विभेद का बवंडर सृजित करने से घाटा ही घाटा है। धर्म या साधना तो उस एक को प्राप्त करने के लिए ही है। फिर मार्ग भिन्न-भिन्न कैसे हो सकता है? कबीर के धर्म का मर्म है एक को प्राप्त करने के लिए एक बनो। अनेकता की दीवार तोड़ो कर्मकांड छोड़ो। सहज को प्राप्त करने के लिए सहज बनो। सब घट में एक है तो सब घटवासी समगोत्रीय हो। इसीलिए एक को मानो-जानो। इसी में कल्याण है।

(न बांटिए कबीर को से साभार)

क्रान्तिकारी समाज-सुधारक तथा युग-प्रवर्तक कवि

लेखक—श्री अवधेश नारायण मिश्र 'दीपक'

महात्मा कबीरदास के विषय में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का यह कथन कि "हिन्दी साहित्य के हजार वर्ष के इतिहास में कबीर जैसा व्यक्तित्व लेकर कोई लेखक उत्पन्न नहीं हुआ।[1] सर्वांशतः सत्य है। वास्तव में, कबीर अपने युग के सर्वाधिक प्रतिभा-सम्पन्न, प्रभावशाली तथा चर्चित व्यक्ति थे। वे प्रचण्ड अथवा दबंग व्यक्तित्व के धनी थे। वे एक सदाचारी सन्त तथा परम ज्ञानी निर्गुण भक्त थे। वे एक निर्भीक स्पष्ट वक्ता, प्रभावशाली धर्मोपदेशक तथा कठोर आलोचक थे। व्यक्तिगत स्वार्थ और सांसारिक मोह-माया से मुक्त वे अपने मन के बादशाह थे। उनका आत्म-कथन है—

चाह मिटी, चिन्ता गई, मनुआ बेपरवाह।
जिनको कछू न चाहिए, सोई शाहनशाह॥

"ऐसे थे कबीर—सिर से पैर तक मस्तमौला; स्वभाव से फक्कड़ आदत से अक्खड़; भक्त के सामने निरीह, भेषधारी के आगे प्रचण्ड, दिल के साफ, दिमाग के दुरूस्त; भीतर से कोमल, बाहर से कठोर; जन्म से अस्पृश्य, कर्म से वन्दनीय।"[2]

कबीर मूलतः और मुख्यतः एक सहृदय भक्त, अप्रतिम सन्त और महान ज्ञानी थे। इससे भी अधिक, वे एक युग-चेता कवि, क्रान्तिकारी विचारक तथा प्रबल समाज-सुधारक भी थे। उनका युग-बोध अत्यन्त यथार्थवादी गम्भीर और व्यापक था। कल्पनालोक में—आध्यात्मिक जगत में विचरण करते हुए भी वे सदैव इहलोक और इस धरातल से जुड़े रहने वाले साधु-साधक थे। अपने देश, काल तथा वातावरण का उन्हें सम्यक बोध था।

कबीर की समकालीन परिस्थितियां (संवत् 1456 से संवत् 1575 तक)[3] अत्यन्त जटिल तथा द्वन्द्वपूर्ण थीं। पंद्रहवीं शताब्दी के आरम्भ तक भारत का अधिकांश भू-भाग मुसलिम आक्रान्ताओं के अधीन हो चुका था। प्रायः सभी शीर्षस्थ हिन्दू शासक अपनी स्वाधीनता खोकर नत-मस्तक हो चुके थे। उत्तर भारत में सैय्यद तथा लोदी वंश के सुलतानों का प्रभुत्व स्थापित हो चुका था। परन्तु अवसर पाते ही छोटे-मोटे तुर्क, अफ़गान तथा हिन्दू सरदार विद्रोह करने से न चूकते थे। अतः देश में राजनीतिक कलह-कटुता, पारस्परिक संघर्ष, विघटन व अस्थिरता का वातावरण बना हुआ था। जनता के मन में आतंक, चिन्ता और भय व्याप्त था। आर्थिक दृष्टि से भी उत्तर भारत बहुत श्री-सम्पन्न तथा सुख-समृद्ध नहीं था। हिन्दू व मुसलिम समाज रूढ़िवाद, जाति-भेद, ऊंच-नीच, छुआछूत, बाह्याडम्बर तथा अंधविश्वास जैसी नाना कुरीतियों एवं दुर्गुणों से ग्रस्त थे। धार्मिक क्षेत्र में हिन्दू पौराणिक धर्म तथा इस्लाम धर्म (मज़हब) एक-दूसरे के प्रतिद्वन्द्वी थे। अनेक पंथ, मत और सम्प्रदाय विद्यमान थे। हिन्दू धर्म में सगुण और निर्गुण दोनों प्रकार की उपासना पद्धतियां प्रचलित थीं। पुरोहितवाद और कठमुल्लापन का बोलबाला था। मजहबी भूत सवार होने के कारण मुसलमान शासक तलवार के बल पर धर्म-प्रसार तथा बलात् धर्मान्तरण पर तुले हुए थे। नैतिक मूल्यों का निरन्तर विघटन और ह्रास हो रहा था। ऐसी विषम परिस्थितियों में हिन्दू भक्तिवाद और पश्चिमी सूफ़ीवाद मानवीय सौहार्द, पारस्परिक प्रेम, धार्मिक सहिष्णुता एवं सांस्कृतिक समन्वय का मार्ग प्रशस्त करने का अथक प्रयत्न कर रहे थे।

---

1. कबीर-आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी पृ. 222।
2. कबीर-आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी पृ. 174।
3. कबीर-ग्रंथावली—बाबू श्यामसुन्दरदास के मतानुसार कबीरदासजी का जन्म संवत् 1456 में तथा उनकी मृत्यु संवत् 1575 में हुई थी।

महात्मा कबीरदास एक सजग युगद्रष्टा और सक्रिय युगस्रष्टा कलाकार थे। अतः उन्होंने अपनी समकालीन चतुर्मुखी असन्तुलित अव्यवस्था को भली-भांति देखा, परखा, समझा और अपना युगोचित कवि-कर्त्तव्य निश्चित किया। उन्होंने मानव-जीवन के सभी क्षेत्रों को सुव्यवस्थित, सुपरिष्कृत तथा सुसन्तुलित बनाने का दृढ़ निश्चय किया। अपने मर्मस्पर्शी युगबोध से प्रेरित होकर कबीर ने युग-परिवर्तन और समाज-सुधार का बीड़ा उठाया। उनका उद्देश्य समकालीन प्रशासन, समाज, धर्म, नीति, चरित्र आदि में अन्तःव्याप्त कुरीतियों व कुसंस्कारों का समूल विनाश करना, मूलबद्ध रूढ़ियों को तोड़ना, अंधविश्वासों एवं बाह्याचारों को समाप्त करना था। वे स्वच्छ-संशोधित, संतुलित और युगोचित नवीन व्यवस्था के सबल पक्षधर थे। अतएव मन का वह बादशाह ज्ञान-रूपी हाथी पर सवार होकर और ज्ञान की तलवार हाथ में लेकर समकालीन सामाजिक-धार्मिक-नैतिक रूढ़ियों, कुसंस्कारों तथा बाह्याचारों के सुदृढ़ जंजालों पर टूट पड़ा और सच्चे शूर की भांति अन्त तक जूझता ही रहा। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के मतानुसार—"वे समस्त बाह्याचारों के जंजालों और कुसंस्कारों को विध्वंस करने वाले क्रान्तिकारी थे। समझौता उनका रास्ता नहीं था।[1]

कबीर सर्वप्रथम भक्ति-तत्त्व-शोधक साधक थे। "भक्ति-तत्त्व की व्याख्या करते-करते उन्हें बाह्याचार के उन जंजालों को साफ करने की जरूरत महसूस हुई जो अपनी जड़ प्रकृति के कारण विशुद्ध चेतन-तत्त्व की उपलब्धि में बाधक हैं। यह बात ही समाज-सुधार और साम्प्रदायिक ऐक्य की विधात्री बन गई।"[2] उनके जैसे विशुद्ध भगवद-भक्ति-रूपी सत्य-तत्त्वान्वेषी के लिए अज्ञानजन्य समस्त बाह्याचारों को विच्छेदन करना परमावश्यक युग-धर्म था। अतएव, अपने इस युग-धर्म का कुशल निर्वाह करने के लिए कबीर समस्त संचित ज्ञान-राशि लेकर सामने आये। अपना अभीष्ट लक्ष्य प्राप्त करने के लिए उन्होंने महान दार्शनिकों के जैसी खण्डन-मण्डन-विधि का प्रयोग किया। असत्य का खण्डन, सत्य का मण्डन, अज्ञान का खण्डन, ज्ञान का मण्डन; घृणा का खण्डन, प्रेम का मण्डन; बाह्याचार का खण्डन और शुद्ध चेतन तत्त्व का मण्डन। उन्होंने अपने अकाट्य तर्कों, मार्मिक उपदेशों और प्रभावी प्रवचनों से देश, समाज, धर्म और व्यक्ति को दूषित और पथभ्रष्ट करनेवाले समस्त कुविचारों और बाह्याचारों की स्पष्ट शब्दों में कठोर आलोचना एवं तीव्र भर्त्सना की तथा उन सब पर यथाशक्ति प्रबल प्रहार किया। उन्होंने अपनी सतेज वाणी तथा ऊर्जस्वित कविता के माध्यम से व्यक्ति-परिष्कार, धर्म-शोधन तथा समाज-सुधार के सम्बद्ध अपने युक्तियुक्त विचारों का सहज उद्घाटन किया। उन्होंने अपने दोहों, वाणियों, रमैनी, पदों जैसे विविध काव्य-रूपों और विभिन्न छन्द-रूपों में अपनी समकालीन ज्वलन्त सामाजिक, धार्मिक व नैतिक समस्याओं तथा उनके समाधानों का अनूठे ढंग से प्रतिपादन किया है। तीखी-आक्रोशपूर्ण चुटीली भाषा में व्यंजित उनकी अनुभवसिद्ध उक्तियां और वाणियां बेधने वाली और उनके गूढ़ व्यंग्य चोट करने वाले प्रमाणित हुए हैं। उनके काव्य-साहित्य का बहुत बड़ा भाग इसी प्रकार की उक्तियों, वाणियों और रहस्यवादी पदावलियों से समृद्ध और परिपूर्ण है। उदाहरण-स्वरूप उनमें से कुछ प्रासंगिक पंक्तियां यहां उद्धृत की जा रही हैं।

1. मूर्ति-पूजा का विरोध—कबीर मुख्य रूप से ज्ञानमार्गी निर्गुणोपासक भक्त थे। उन्होंने देखा कि मूर्ति-पूजा के प्रश्न पर हिन्दू और मुसलमान एक-दूसरे के कट्टर शत्रु बने हुए हैं। अतः उन्होंने हिन्दू समाज में प्रचलित मूर्ति-पूजा के साथ-साथ पौराणिक अवतारवाद तथा बहुदेववाद का दृढ़तापूर्वक खण्डन किया। उन्होंने मूर्ति-पूजा की निस्सारता प्रतिपादित करते हुए कहा कि—

दुनिया ऐसी बावरी, पाथर पूजन जाय।
घर की चाकी कोइ न पूजे, जाको पीसो खाय॥

1. कबीर - आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ. 192।
2. कबीर - आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ. 226।

उन्होंने हिन्दुओं की मूर्ति-पूजा और मंदिर-निर्माण की प्रथा की भांति मुसलमानों के द्वारा मसजिद निर्माण और उनकी नमाज-अजान पर भी तीव्र व्यंग्य किया है—

कांकर-पाथर जोरि कै, मस्जिद लई चुनाय।
जा चढ़ि मुल्ला बाँग दे, क्या बहरा हुआ खुदाय॥

इस सन्दर्भ में उन्होंने हिन्दू पण्डितों और मुसलिम मुल्लाओं की अच्छी खासी खबर ली है।

2. धार्मिक वैमनस्य तथा साम्प्रदायिक संकीर्णता पर प्रहार एवं हिन्दू-मुस्लिम एकता का प्रतिपादन— कबीर ने तत्कालीन धार्मिक वैमनस्य और साम्प्रदायिक संकीर्णता तथा कटुता का सर्वत्र खंडन तथा विरोध किया है। राम-रहीम की एकता घोषित करके उन्होंने हिन्दुओं तथा मुसलमानों के मध्य वैचारिक भेदभाव की गहरी खाई को पाटकर दोनों में धार्मिक सद्भाव और साम्प्रदायिक सौहार्द स्थापित करने का भरसक प्रयास किया। उन्होंने स्पष्ट घोषित किया—

भाई रे! दुई जगदीश कहाँ ते आया, कहु कवने भरमाया?
अल्लह-राम, करीमा-केशव, हरि-हजरत नाम धराया।

"उनका कहना था कि उस महान और निराकार शक्ति को चाहे खुदा कहो या राम कहो; शिव कहो या अल्लाह कहो—एक ही बात है। ईश्वर का वर्णन चाहे कुरान में हो या पुराण में हो—एक-ही है। हिन्दू-तुर्क, जैन, योगी सभी एक-ही ईश्वर को मानते हैं; पर उनकी उपासना-प्रद्धतियां अलग-अलग हैं।'[1] देखिये—

हिन्दू मूये राम कहि, मुसलमान खुदाय।
कहै कबीर सो जीवता, दुइ में कदे न जाय॥

वास्तव में कबीर भारत में हिन्दू-मुसलिम-एकता के अग्रदूत थे। इस तथ्य को आचार्य हजारीप्रसाद जी द्विवेदी ने भी स्वीकार किया है—

"राम-रहीम और केशव-करीम की एकता स्वयं-सिद्ध है। कबीर से अधिक जोरदार शब्दों में इस एकता का प्रतिपादन किसी ने नहीं किया।[2]

3. अंधविश्वासों तथा बाह्याचारों का खण्डन— कबीर के समकालीन समाज और धर्म में अनेक प्रकार के बाह्याचार, अंधविश्वास और आडम्बर प्रचलित थे। परन्तु "बाह्याचार की निरर्थक पूजा और संस्कारों की विचार-हीन गुलामी कबीर को कतई पसन्द नहीं थी।"[3] वे अपने समाज और धर्म को परिष्कृत और संशोधित रूप में देखना चाहते थे। अतएव उन्होंने हिन्दुओं और मुसलमानों और उनके पौराणिक एवं इस्लामी धर्मों में प्रचलित निरर्थक कर्मकाण्डों, पूजा-पद्धतियों, अंधविश्वास-मूलक बाह्याचारों आदि का डटकर विरोध किया। जप, माला, छापा, तिलक, केश-मुंडन, व्रत-उपवास, तीर्थ-यात्रा, अजान, रोजा, कब्र-पूजा, हज, पीर, औलिया आदि की निरर्थकता और निस्सारता प्रतिपादित करने में लेशमात्र भी न झिझके। उनके विचार से ये सभी आडम्बर (ढकोसला) मात्र हैं; मनुष्य के स्वस्थ विकास और आत्मोन्नयन में इनकी कोई उपयोगिता नहीं है; यथा—

(क) *मूँड़ मुड़ाए हरि मिले, सब कोई लेय मुँड़ाय।*
बार-बार के मूँड़ते, भेड़ न बैकुंठ जाय॥

(ख) उन्होंने व्रत-उपवास, उत्सव-त्योहार आदि सबको अस्वीकार कर दिया—

हिन्दू बरत-एकादसि साधैं, दूध-सिंघारा सेती।
अन्न को त्यागैं, मन को न हटकैं, पारन करें सगोती॥
तुरुक रोजा-नीमाज गुजारैं, बिसमिल बाँग पुकारैं।
इनको भिस्त कहाँ तें होइहै, साँझै मुरगी मारैं॥

(ग) इसी प्रकार श्रद्धाहीन अशुद्ध मन से माला फेरना भी व्यर्थ है—

माला फेरत जुग गया, गया न मन का फेर।
कर का मनका छाँड़ि कै, मन का मनका फेर॥

(घ) उनके मतानुसार ईश्वर-प्राप्ति के लिए तन से नहीं बल्कि मन से जोगी होना आवश्यक है—

तन को जोगी सब करैं, मन को बिरला कोय।
सब सिधि सहजे पाइए, जो मन जोगी होय॥

---

1. ऐतिहासिक निबंध (महात्मा कबीर)—डॉ. दयाप्रकाश रस्तोगी, पृ. 230।
2. कबीर - आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ. 224।
3. कबीर - आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ. 223।

4. मानवीय दोषों के परित्याग पर जोर—कबीर-कालीन समाज में अधिकांश लोग परछिद्रान्वेषण, छल-कपट, झूठ, दम्भ-द्वेष-वैर, कुसंगति, दुर्व्यसन इत्यादि नाना प्रकार के दोषों-दुर्गुणों अथवा मानवीय दुर्बलताओं से ग्रस्त थे। इनसे समग्र समाज दूषित हो रहा था। अतः कबीर ने अपने प्रवचनों और उपदेशों में प्रयुक्त व्यंग्य-वाणों से तमाम दुष्प्रवृत्तियों पर प्रहार किये। इस प्रकार की कतिपय पंक्तियां उद्धृत हैं—

(1) (परछिद्रान्वेषण)

दोष पराये देखि कै, चले हसन्त-हसन्त।
अपने चित्त न आवहीं, जिनका आदि न अन्त॥

(2) (कुसंगति)

मूरख संग न कीजिए, लोहा जल न तिराइ।
कदली-सीप-भुवंग-मुखि, एक बूँद ठिटहै भाइ॥

(3) (मानापमान)

कबिरा वहाँ न जाइये, जहाँ कपट का हेत।
जाणूँ कली अनार की, तन रातौ मन सेत॥

अतः स्पष्ट है कि कबीर ने समाजगत तथा व्यक्तिगत दोषों का कुशलतापूर्वक खण्डन करके शुद्धता, सादगी, समरसता, सदाचार जैसे वरेण्य मूल्यों की स्थापना का स्तुत्य प्रयास किया है।

5. सारग्राही बनने का उपदेश—कबीर ने जातिगत, कुलगत, धर्मगत, संस्कारगत, विश्वासगत, शास्त्रगत, सम्प्रदायगत, समाजगत समस्त भेदभावों को तिरोहित करके व्यष्टि और समष्टि उभय स्तरों पर सारग्रहण, समरसता, सहिष्णुता, सौहार्द्र तथा समन्वयशीलता की प्रवृत्ति विकसित करने पर सर्वत्र जोर दिया है। उन्हीं के शब्दों में—

साधू ऐसा चाहिए, जैसा सूप सुभाय।
सार-सार को गहि रहै, थोथा देहि उड़ाय॥

6. निर्मल-सत्य-रूप प्रेम-तत्त्व का महत्त्व-प्रतिपादन—कबीर प्रधान रूप से एक सच्चे भक्त और आध्यात्मिक साधक थे। अतः उन्होंने केवल उस निर्मल-निरंजन-सत्य-रूप प्रेम-तत्त्व पर सर्वाधिक बल दिया है जिसके द्वारा परम ब्रह्म परमेश्वर को सहज ढंग से प्राप्त किया जा सकता है। समस्त धर्मग्रन्थों में संचित ज्ञान की अपेक्षा वे इस ढाई अक्षर वाले प्रेम को ही अधिक श्रेयस्कर मानते थे—

पोथी पढ़ि-पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोय।
ढाई आखर प्रेम का, पढ़े सो पंडित होय॥

भक्त के पवित्र हृदय में इस प्रेम-ज्योति के प्रकट होते ही सारा भ्रम-अज्ञान दूर हो जाता है और उस परमतत्त्व के साथ अद्वैत-भाव की दिव्य अनुभूति सहज सिद्ध हो जाती है। कबीर के शब्दों में—

पिंजर प्रेम प्रकासिया, जाग्या जोत अनंत।
संसा खूटा, सुख भया, मिल्या पिआरा कन्त॥

निष्कर्ष

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि महात्मा कबीर एक अप्रतिम क्रान्तिकारी समाज-सुधारक, असाधारण विचारक तथा युग-प्रवर्तक कवि थे। उन्होंने अपने समकालीन समाज, धर्म और हिन्दी काव्य-साहित्य को एक नवीन युग-बोध, भाव-स्फूर्ति और नवीन जीवन-दर्शन देकर अमोघ शक्ति-सम्बल प्रदान किया था। उन्होंने वैचारिक क्रान्ति, समाज-सुधार तथा आध्यात्मिक चेतना की मशाल प्रज्वलित कर तत्कालीन दिग्भ्रान्त और पथभ्रष्ट जनों का सफल मार्गदर्शन किया था। वे सगुण और निर्गुण, ज्ञान और भक्ति, उच्च और निम्न के बीच अद्भुत समन्वयकर्ता तथा हिन्दू-मुस्लिम-एकता के महान अग्रदूत थे। मैं मनीषी विद्वान आचार्य हजारीप्रसादजी द्विवेदी के इस मत से पूर्णतः सहमत हूं कि "युगावतारी शक्ति और विश्वास लेकर वे पैदा हुए थे और युग-प्रवर्तक की दृढ़ता उनमें वर्त्तमान थी, इसीलिए वे युग-प्रवर्तन कर सके थे।[1] निःसंदेह, अपने द्वारा सम्पादित महत् कार्य के लिए वे सदैव अमर और चिरस्मरणीय रहेंगे।

शून्य मरै, अजपा मरै, अनहद-हू मरि जाय।
राम-सनेही ना मरै, कह कबीर समुझाय॥

('कबीर अनुशीलन' से साभार)

---

1. कबीर- आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ.177।

व्यवहार वीथी

ईर्ष्या से बचें

ईर्ष्या स्वयं के द्वारा लगायी एक ऐसी आग है, जो बाहर किसी को दिखाई तो नहीं पड़ती, किन्तु आदमी स्वयं इस आग में अंदर-अंदर जलता रहता है। उसे न दिन में चैन पड़ता है और न रात में। यहां तक उसकी भूख-प्यास, नींद, सुख, शांति, स्वास्थ्य सब कुछ घटने लग जाता है या घट जाता है। ईर्ष्यालु आदमी प्रसन्नता का अनुभव कभी कर ही नहीं पाता।

ईर्ष्यालु आदमी अपने दुख से दुखी नहीं होता, किन्तु वह दुखी होता है दूसरों के सुख को देखकर। वह दूसरों के सुख, मान, सम्मान, प्रतिष्ठा, उन्नति, बढ़ोत्तरी आदि को सहन नहीं कर पाता और अंदर-अंदर अपनी बनायी आग में जलता रहता है।

ईर्ष्या में आदमी जो अपने को प्राप्त है उसे नहीं देखता किन्तु वह जो दूसरों को प्राप्त है उसे देखता है जबकि उसको जो प्राप्त है उसमें वह प्रसन्नता एवं सुखपूर्वक जीवन जी सकता है। ईर्ष्यालु आदमी यह सोचता है कि धन-दौलत, सुख-सुविधा, पद-प्रतिष्ठा, मान-सम्मान में कोई मुझसे आगे न बढ़े। हर बात में हर समय हर जगह मैं ही आगे रहूं, परंतु ऐसा संभव कहां है। दुनिया में सबका प्रारब्ध और पुरुषार्थ अलग-अलग हैं। दुनिया में एक से बढ़कर एक ज्ञानी, गुणी, विद्वान, धनवान, योग्यता एवं प्रतिभासंपन्न लोग हुए हैं, आज हैं और आगे भी होते रहेंगे। जो स्थिति है उसे स्वीकार करके आगे बढ़ने के लिए पुरुषार्थ करते रहना चाहिए, यही सुख से जीने का सुन्दर तरीका है। ईर्ष्या में पड़कर आदमी निरर्थक क्यों और कैसे न हुआ दुख सहता है निम्न उदाहरण से समझ सकते हैं—

दो पड़ोसियों ने एक साथ आमने-सामने दुकान खोली। कुछ दिन बाद ही दोनों की दुकान अच्छा चलने लगी। दोनों के यहां ग्राहकों की अच्छी भीड़ होने लगी और दोनों को अच्छा मुनाफा होने लगा, परन्तु दोनों को यह लगता था कि मेरे यहां की अपेक्षा सामने वाले के यहां ज्यादा ग्राहक आते हैं, उसके यहां ज्यादा बिक्री होती है और उसे ज्यादा मुनाफा होता है। फलस्वरूप दोनों को दोनों से ईर्ष्या होने लगी और यह ईर्ष्या इतनी बढ़ गयी कि दोनों की भूख-प्यास, नींद घट गयी। दोनों हमेशा एक दूसरे के लिए नकारात्मक बातें सोचते रहते। फलस्वरूप दोनों बीमार हो गये। अनेक प्रकार की चिकित्सा करवाने के बाद भी बीमारी बढ़ती गयी। थक-हार कर दोनों एक संत के पास गये। दोनों की पूरी बातें सुनने के बाद संत को पता चल गया कि इनकी बीमारी शारीरिक नहीं, अपितु मानसिक है और केवल एक दूसरे के प्रति ईर्ष्या ही इसका कारण है। संत ने दोनों को समझाया और दोनों को राजी करके कहा— तुम दोनों चार-छह माह के लिए दुकान की अदला-बदली कर लो। दुकान जिसकी है उसकी ही रहेगी। लेकिन तुम दोनों को एक दूसरे की दुकान में जाकर उसी प्रकार बिक्री करना है जिस प्रकार अपनी दुकान में बिक्री करते हो। संत की बात मानकर दोनों वैसे ही करने लगे। कुछ दिन बाद दोनों को लगा कि इस दुकान में वैसी ही बिकी होती है और वैसा ही मुनाफा होता है जैसी बिक्री मेरी दुकान में होती है बल्कि कभी-कभी तो मेरी दुकान से इस दुकान में कम बिक्री होती है। यह जानकर दोनों के मन में एक दूसरे के प्रति उत्पन्न ईर्ष्या घटकर प्रेम और सद्भावना बढ़ने लगी। जैसे-जैसे ईर्ष्या घटकर सद्भावना बढ़ने लगी वैसे-वैसे उनकी बीमारी घटने लगी और एक दिन दोनों की बीमारी पूरी तरह से मिट गयी और जब मानसिक ईर्ष्या दूर हुई तो दोनों एक दूसरे के सहयोगी और मित्र बन गये।

हर आदमी को चाहिए कि वह जिस दिशा में आगे बढ़ना और सफल होना चाहता है उस दिशा में समर्पित भाव से प्रयत्न-पुरुषार्थ करता चले, किन्तु उस दिशा में उससे जो आगे बढ़े हुए हैं या बढ़ रहे हैं उन्हें देखकर उनसे ईर्ष्या न करे और न उनकी निंदा-आलोचना करे, अपितु उनसे प्रेरणा ले तथा यह सोचकर प्रसन्न हो कि

इसी प्रकार यदि सभी लोग आगे बढ़ते रहें तो हमारा समाज और देश कितना खुशहाल और समृद्ध होगा। हर आदमी को अपनी उन्नति एवं सफलता प्यारी होती है, होनी भी चाहिए। इसीलिए तो आदमी परिश्रम करता है। इसके साथ-साथ दूसरों की उन्नति भी प्यारी होनी चाहिए, तभी वह प्रसन्न रह सकता है। जिसे दूसरों की उन्नति प्यारी नहीं लगती वह चाहे जितनी उन्नति कर ले, जितना आगे बढ़ जाये कभी प्रसन्नतापूर्वक जी नहीं सकता।

सड़क पर यात्रा करते समय आपने किसी-किसी गाड़ी या ट्रक के पीछे लिखा देखा होगा—"जलो मत बराबरी करो।" और यह भी—"देखो मगर प्यार से।" "जलो मत बराबरी करो।" इसका यही अर्थ है कि किसी को आगे बढ़ते देखकर उससे ईर्ष्या मत करो, किन्तु यह सोचो कि वे आगे क्यों बढ़ गये हैं। उनसे प्रेरणा लेकर वैसी ही मेहनत करें आप भी आगे बढ़ जायेंगे। ईर्ष्या करने या मन में जलन रखने से आगे तो बढ़ नहीं पायेंगे, मन की प्रसन्नता एवं शांति भी चली जायेगी। इसीलिए कहा गया है 'देखो मगर प्यार से।" अर्थात आगे बढ़े हुए, उन्नत एवं सफल लोगों को देखकर प्रसन्नता व्यक्त करो और उनके लिए मन में प्रेमभाव रखो। जिसके लिए मन में प्रेम एवं मैत्री भाव होता है उसकी उन्नति एवं सुख को देख-सुनकर स्वाभाविक ही प्रसन्नता होती है। वहां ईर्ष्या-द्वेष के लिए कोई गुंजाइश नहीं होती।

किसी की सफलता या सुख को देखकर ईर्ष्या होने का कारण है उस सफलता या सुख को आदमी खुद अपने लिए चाहता था, परन्तु वह उसको न मिलकर दूसरे को मिल गया। और आदमी को यही बात सहन नहीं होती, फिर वह उससे ईर्ष्या तो करने लगता ही है, उसकी निंदा-बुराई भी करने लग जाता है। परन्तु किसी की निन्दा-बुराई करके न तो कोई आगे बढ़ पाया है और न सुखी हो सका है। आगे बढ़ने एवं सुखी होने का रास्ता है समर्पितभाव से परिश्रम करना और जो प्राप्त हो उसमें संतुष्ट रहना।

आप जितनी उन्नति करना चाहते हैं अवश्य करें, परन्तु उस उन्नति में किसी को पछाड़ने, नीचा दिखाने एवं दुखी करने का भाव बिलकुल नहीं होना चाहिए। यदि ऐसा भाव है तो स्वयं आपको नीचा देखना एवं दुखी होना पड़ सकता है। निम्न उदाहरण से इसको समझा जा सकता है—

एक महिला एक कपड़े की दुकान में जाकर दुकानदार से पूछती है—क्या अमुक प्रकार की साड़ी आपकी दुकान में है? दुकानदार ने कहा—बहिन जी, अभी कल तो आप हमारी दुकान से कई महंगी साड़ियां खरीदकर ले गयी हैं, फिर आज और साड़ी, उसमें भी अमुक साड़ी ही क्यों खरीदना चाहती हैं? महिला ने कहा—कल शाम को टी.वी. में मैंने उस साड़ी का विज्ञापन देखा और यह पता चला कि वह साड़ी आपकी दुकान में उपलब्ध है। मैं उस साड़ी को इसलिए खरीदना चाहती हूं कि जब मैं उस साड़ी को पहनकर निकलूं तब मेरी पड़ोसिनें मुझे उस साड़ी को पहने देखकर जल-भुनकर राख हो जायें। दुकानदार ने कहा—माफ करना बहिन, जिस साड़ी की आप बात कर रही हैं वैसी एक ही साड़ी हमारे दुकान में थी और अभी थोड़ी देर पहले आपकी पड़ोसिन उस साड़ी को खरीदकर ले गयी है।

उक्त उदाहरण का सार इतना ही है कि आप जो भी करें अपनी खुशी के लिए तो करें, परन्तु उस खुशी में किसी दूसरे को दुखी करने का भाव न हो। यदि आपकी खुशी में दूसरों को दुखी करने का भाव है, आप जो कर रहे हैं दूसरों को दुखी करने, नीचा दिखाने के लिए कर रहे हैं तो आप कभी खुश नहीं रह सकते, चाहे जितनी सफलता आप प्राप्त कर लें। जो सबकी उन्नति में अपनी उन्नति, अन्यों की प्रशंसा में अपनी प्रशंसा और अन्यों की प्रसन्नता में अपनी प्रसन्नता देखता है, वही हर स्थिति में प्रसन्न रह सकता है, क्योंकि उसके मन में न किसी लिए ईर्ष्या रह जाती है और न किसी के लिए निन्दा-आलोचना।

महाभारत का जो विनाशक युद्ध हुआ है उसके अनेक कारणों में एक प्रमुख कारण है दुर्योधन का पाण्डवों के प्रति घोर ईर्ष्या। कौरवों और पाण्डवों को अलग-अलग राज्य बांट दिया गया था। दोनों अपना-अपना राज कर रहे थे। जब पाण्डवों ने राजसूय यज्ञ

किया और उसमें पाण्डवों को जो ऐश्वर्य तथा यश मिला उसे देखकर दुर्योधन सह नहीं सका। उसके ईर्ष्या की आग और धधक उठी तथा वह अत्यंत दुखी हो गया। फिर जुआ में छलपूर्वक पाण्डवों का सब कुछ हर लिया गया।

शर्त के अनुसार पाण्डव जब वनवास कर रहे थे, तब भी दुर्योधन बीच-बीच में उन्हें अपमानित करने, कष्ट पहुंचाने, यहां तक उनका नाश करने का उपाय करते रहे। अंततः दुर्योधन सहित कौरव-कुल का समूल विनाश हो गया। इसलिए किसी की उन्नति तथा खुशहाली देखकर ईर्ष्या न करें अपितु खुश होवें। खुश होकर काम करने से आप भी अपनी उन्नति कर सकते हैं।

एक बात का और ध्यान रखें किसी की खींची हुई लकीर को काटकर या मिटाकर आपको अपनी लकीर बड़ी नहीं करना है, अपितु आपको अपनी लकीर उसकी लकीर से बड़ी खींचना है। उसकी लकीर अपने आप छोटी हो जायेगी। अर्थात किसी के किसी काम या बात को लेकर उसकी निंदा-बुराई नहीं करना है अपितु आपको उसके काम की अपेक्षा ज्यादा अच्छा काम करना है। वह काम भी किसी को हराने के लिए नहीं करना है, अपितु स्वयं अपनी उन्नति एवं प्रसन्नता के लिए करना है। आप जितना अच्छा काम करते जायेंगे और सच्चाई के पथ पर चलते जायेंगे आपके मन से ईर्ष्या दूर होती जायेगी और हर समय आपका मन प्रसन्नता से भरा रहेगा।

ईर्ष्या और असंतोष ऐसे मानसिक विकार हैं जो आदमी को कभी सुख से जीने नहीं देते। असंतोष में आदमी को सदैव यह भ्रम रहता है कि जो मेरे पास है वह कम है और जो दूसरों के पास है वह ज्यादा है। जो मुझे मिलना चाहिए था वह दूसरों को मिल गया यह सोच-सोचकर आदमी रात-दिन ईर्ष्या की आग में अन्दर-अन्दर जलता रहता है। परिणामस्वरूप जो उसे प्राप्त है, मिला हुआ है उसका भी सुख वह नहीं ले पाता।

दूसरों के सुख-सुविधा एवं उन्नति को देखकर मन में जलन होना ही ईर्ष्या है। इससे बचने का सरल और सुन्दर उपाय है मैत्री भाव। अपने पास-पड़ोस, संगी-साथी-सहयोगी, नाते-रिस्तेदार या जो कोई भी सुखी, समृद्ध, उन्नत, सफल दिखाई दे उन सबके लिए मन में मैत्रीभाव रखने से ईर्ष्या होगी ही नहीं क्योंकि सच्ची मित्रता का लक्षण ही है मित्र के सुख-समृद्धि-उन्नति को देखकर प्रसन्न होना और जहां प्रसन्नता है वहां ईर्ष्या कहां होगी। यदि हम दूसरों के प्रति मैत्रीभाव रखते हैं, मित्रतापूर्वक व्यवहार करते हैं तो दूसरे लोग भी हमारे प्रति मैत्री भाव रखने लगेंगे और मित्रतापूर्वक व्यवहार करने लगेंगे। यजुर्वेद में कितना सुन्दर कहा गया है—

मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम् ।
मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे॥
मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे॥

(यजुर्वेद 36/18)

अर्थात यदि आप चाहते हैं कि दुनिया के लोग मुझे मित्रता की निगाह से देखें तो स्वयं दुनिया के लोगों को मित्रता की निगाह से देखें। उनके प्रति मित्रता का भाव रखें। मैत्री भाव रखने से ईर्ष्या दूर होकर मन में प्रसन्नता बनी रहेगी।

—धर्मेन्द्र दास

- **एक खूबसूरत दिल हजारों खूबसूरत चेहरों से ज्यादा बेहतर होता है। इसलिए जिंदगी में ऐसे लोगों का साथ करो जिनका दिल उनके चेहरों से ज्यादा सुंदर एवं खूबसूरत हो। साथ ही अपने चेहरे को खूबसूरत बनाने का पागलपन छोड़कर दिल को सुंदर, खूबसूरत और स्वच्छ बनाने एवं रखने का प्रयास करते रहो।**
- **शरीर काला है या गोरा, कुरूप है या सुरूप इसकी चिंता मत करो। शरीर जैसा है वैसा है। चिंता इसकी करो कि तुम्हारे मन, विचार, वाणी, व्यवहार, कर्म-आचरण काला या कुरूप न बनने पायें। शरीर को सुरूप बनाने में सफल भले न हो पाओ किन्तु मन को सुरूप बनाने में असफल कभी मत होना।**

साधना पथ में सावधानी

लेखक—भूपेन्द्र दास

1. सारे रोगों का एक ही इलाज है 'वैराग्य'। वैराग्यभाव उदय होते ही सारी अशांति, पीड़ा एवं दुख समाप्त हो जाते हैं। सच्ची निर्भयता का सुख बिना वैराग्य के संभव नहीं है। सारा संसार दुखों की भट्ठी में रात-दिन जल रहा है। कहीं तन का दुख है तो कहीं मन की पीड़ा। वासना की दलदल से बाहर निकलकर स्वरूपभाव में लीनता साधक का परम प्राप्तव्य है। व्यावहारिक धरातल पर भी शांति से जीने का अभ्यास करते रहना चाहिए। दूसरों के द्वारा निकले हुए वाक्प्रहार को सह लें और आप स्वयं दूसरों के लिए असंयत वाणी का प्रहार न करें। इस प्रकार अपने मन को मारकर पूर्ण विश्राम को पा जायें।

2. गुरु रोज की तरह अपना लोटा मांज रहे थे। तभी एक शिष्य ने आकर कहा—गुरुदेव, लोटा को रोज मांजने की क्या आवश्यकता है? सप्ताह में एक बार मांज लिया करें। गुरु ने कहा—बेटा, बात तो सही है और उसके बाद उन्होंने उसे मांजना बंद कर दिया। धीरे-धीरे उस लोटे की चमक फीकी पड़ने लगी। एक सप्ताह बाद गुरु ने शिष्य से कहा—बेटा, लोटा को साफ कर दो। शिष्य पूरी ताकत लगाकर बहुत देर तक मांजता रहा फिर भी पहली वाली चमक नहीं ला सका। कुछ देर पश्चात दुबारा फिर से मांजा तब कहीं कुछ चमक वापस आयी। गुरु ने शिष्य से कहा—बेटा, लोटा से कुछ सीख ले लो। जब तक यह रोज मांजा जाता रहा तब तक यह रोज चमकता रहा। ऐसे ही साधक का जीवन होता है। अगर वह मन को रोज साफ न करे तो मन संसारी विचारों में पड़कर अपनी चमक खो देता है। इसको रोज ध्यान, सत्संग, स्वाध्याय तथा सेवा से चमकाना चाहिए। यदि एक दिन भी सत्संग, सेवा, ध्यान का अभ्यास छोड़ा तो चमक फीकी पड़ जायेगी। अतः सावधान!

3. जिस प्रकार दरिया (समुद्र) में खाली नाव समुद्र के थपेड़ों को सहकर भी किनारे लग जाती है, बशर्ते उसमें छेद न हो उसी प्रकार जीवनरूपी नैया संसाररूपी समुद्र में थपेड़ों को सहकर गुरुभक्तिरूपी सत्कर्मों की लहरों द्वारा किनारे लग जाती है। बशर्ते काम, क्रोध, लोभ, मोह, आशा, तृष्णा, अहंकाररूपी छेद न हो। 'सुख' व्यक्ति के अहंकार की परीक्षा लेता है और 'दुख' व्यक्ति के धैर्य की। दोनों परीक्षाओं में उत्तीर्ण व्यक्ति का जीवन ही सफल जीवन है।

4. प्रारंभ में लिखने का अभ्यास एक बिंदु से होता है। जल की एक-एक बूंद से सिंधु बनता है। साधना की थोड़ी कमाई से साधना का भवन पुष्ट होता है। अतः आज ही साधना की यात्रा प्रारंभ कर दीजिए। आज अगर हम अपने को साधने का काम नहीं करते हैं तो पश्चाताप की अग्नि में जलना होगा। अतः अभी से हम संभल जायें। यात्रा की लंबी दूरी तय करनी हो तो हम रात्रि रहते ही भोर में जग जाते हैं और रात रहते ही चल देते हैं। उर्दू के कवि ने कहा है—"जवानी में अज़ल[1] के वास्ते सामान कर गाफिल, मुसाफिर शब उठते हैं जब जाना दूर होता है।"

मृत्यु आने के पूर्व ही जवानी में ही अपने कल्याण का काम कर लेना चाहिए। जीवन रहते-रहते जाग जायें यह जरूरी है, फिर मत कहना कुछ कर न सका। नरतन तुम्हें निरोग मिला, सत्संगति का भी योग मिला। फिर भी गुरुकृपा अनुभव करके यदि भवसागर से तर न सका फिर मत कहना कुछ कर न सका। सद्गुरु कबीर साहेब ने कहा—सूने घर का पाहुना मन बौरा हो। ज्यों आवै त्यों जाय समुझि मन बौरा हो।[2]

5. आपने अनुभव किया होगा अधिकतर शहरों में भारी वाहनों की ट्रैफिक से बचने के लिए एक बाईपास रोड हुआ करता है और शहर के अंदर 'रिंगरोड'। जिन

---

1. अज़ल = मृत्यु।
2. बीजक, चाचर 2।

गाड़ियों को शहर में कोई काम नहीं होता है वे गाड़ियां शहर के बाईपास रोड से गुजर जाती हैं। विरक्त संसाररूपी शहर के बाईपास रोड से जाते हैं और गृहस्थ बाजार के बीच की सड़क से लड़ते-झगड़ते, ठोकर खाते, औरों को ठोकर देते हुए जाते हैं। बाईपास रोड से कोई बाहर निकल जाये तो बहादुरी नहीं है। बहादुरी तो है कि कोई बीच बाजार से सुरक्षित निकल जाये। जाम में फंसकर भी सुरक्षित गाड़ी निकाल ले जाये। विरक्त का मार्ग सरल है—बाईपास रोड से सीधे निकल जाते हैं। धक्का-मुक्का, हल्ला-गुल्ला, मिट्टी-कीचड़, राग-रंग आदि में पड़े बिना ही विवेक दृष्टि से सीधे पार हो जाते हैं। किन्तु धन्य हैं वे सद्गृहस्थ जो गृहस्थी के जंजाल में फंसकर भी कुछ समय साधना-ध्यान के लिए निकालते हैं और साधना की सड़क पर धीरे-धीरे जीवन की गाड़ी पार निकाल ले जाते हैं। सद्गुरु कबीर साहेब जी ने कहा—काजर केरी कोठरी, बुड़ता है संसार। बलिहारी तेहि पुरुष की, जो पैठि के निकरनहार।[1]

6. याद करें उन पलों को जब हम कोई जरूरी सामान खरीदकर वापस घर लौट रहे होते हैं। लौटते समय गाड़ियों की ट्रैफिक इतनी बढ़ गयी कि निकलना मुश्किल। बाजार में साइकिल वाले, मोटर साइकिल वाले, कार वाले सब आगे-पीछे अपनी-अपनी गाड़ी की सीट पर बैठे एक-दूसरे को हार्न सुना रहे हैं। सबका इंजन चालू है पर कोई आगे खिसक नहीं रहा है। सभी अपनी-अपनी गाड़ियों में सवार एक ही जगह स्थिर हैं, पर मनरूपी गाड़ी दौड़ रही है। क्या बताऊं अब तक मैं कब से घर पहुंच गया होता। घर में ये जरूरी काम है अथवा अन्य काम संपन्न होता। पर क्या करें आगे बढ़ने के लिए जगह ही नहीं है। इसी प्रकार जो व्यक्ति अपने जीवन के स्वर्णिम अवसर को कल्याण-साधना के काम में नहीं लगाते वे बुढ़ापा में सिर्फ पश्चाताप की आग में जलते रहते हैं। ऐसे लोगों से सद्गुरु पूछते हैं—"कहहिं कबीर ललनी के सुवना तोहि कौने पकरियो।"[2] हे सुग्गा! तुम्हें किसने पकड़ रखा है। अर्थात तुमको किसी ने नहीं पकड़ा है। भजन करने के लिए कोई दूसरा अवरोध नहीं बनता है। तुम तो लोभ-मोह वश स्वयं संसार के माया-मोह में उलझे हो और कहते हो हमें माया ने पकड़ रखा है। हे जीव (मनुष्य) तुम चाहो तो अभी भी अपना कल्याण कर सकते हो, अभी भी अवसर है।

7. कहा गया है गृहस्थ जीवन एक बहुत बड़ा तपोवन है। जिसमें एक-दूसरे के प्रति प्रेम, श्रद्धा और विश्वास हो। जीवन की गाड़ी को साधना की सड़क पर जो जितना संभव हुआ आगे बढ़ाता है वह सद्गृहस्थ है। एक आदर्श लें—केवट ने जब राम-सीता को गंगा पार कर नाव से उतारा तब श्रीराम जी ने केवट को कुछ देना चाहा मगर कुछ दे न पाये और अफसोस भरे भावों की नजरों से सीता की ओर निहारा। भाव स्पष्ट था जो सीताजी को समझते देर न लगी। श्रीराम जी की नजर कह रही थी कि मेरे हाथ में तो कुछ भी नहीं है। तब जानकी जी ने कहा—उस हाथ में कुछ नहीं है तो इस हाथ में तो है। छल्ला उतारकर दे दीजिए। तब श्रीराम ने मुस्कराते हुए कहा—आपका हाथ मेरा हाथ कब से हो गया। सीता ने मुस्कराहट भरे स्वर में कहा—जब से मेरे पिता ने मेरा हाथ आपके हाथों में सौंप दिया तब से मेरा हाथ आपका हाथ हो गया। यह आदर्श है दांपत्य जीवन का। पारिवारिक जीवन में एक-दूसरे की मर्यादा बनाये रखना, एक-दूसरे का यथासंभव सहयोग करना, एक-दूसरे के ऊंच-नीच व्यवहार, स्वभाव को सह लेना। अधिक से अधिक दूसरों की सेवा का भाव बनाये रखना चाहिए।

8. बैंकों के खजांची (कैशियर) एवं सेठों के मुनीम के कार्य पर विचार करें। ये पूरे दिन रुपयों की गणना करते हैं पर ये इन रुपयों के मालिक नहीं होते। मालिक कोई दूसरा होता है। नोटों की गड्डियों से खेलने वाले आदमी को भी अगर 100 रुपये की आवश्यकता होती है तो वह उन नोटों का उपयोग नहीं कर सकता।

1. बीजक, साखी 226।

2. शब्द 76।

उसे जो मासिक वेतन दिया जाता है वह उतने मात्र का अधिकारी होता है। गायों की देखभाल करने वाला ग्वाला दिनभर गायों की सुरक्षा करता है, गणना करता है कि इनमें से एक भी गाय समूह से अलग न हो किन्तु थोड़ा-सा दूध की आवश्यकता पड़ने पर भी वह प्राप्त नहीं कर सकता। क्योंकि ग्वाला सिर्फ रक्षक है मालिक नहीं। ठीक इसी प्रकार अनेक शास्त्रों का अध्ययन हो, अधिकारी मिलने पर उनका व्याख्यान भी अच्छे से कर लेते हों परंतु जीवन में उन बातों का आचरण नहीं होता, ज्ञान जीवन में उतरता नहीं है तो हमारी भी स्थिति बैंकों के कैशियर, सेठों के मुनीम अथवा ग्वाला के जैसा ही सिर्फ गिनती करने वाले की है, इससे अलग नहीं। ज्ञान अपना तब होता है जब हम उसे आचरण में लाते हैं, जीवन में उतारते हैं। अन्यथा सिर्फ कथनी के पकवान से पेट भरने वाला नहीं है। सद्गुरुदेव अभिलाष साहेब जी ने कहा है—बिना सद्आचरण धारे, न कथनी काम आती है। ये तन, मन, इंद्रियां चंचल, सदा नर को नचाती हैं।

न हो कुछ भी अमल और हों किताबों से लदा।
'जफर' उन आदमी को हम तसऊर बैल कहते हैं।

9. i. अगर आप सही हो तो कुछ भी साबित करने की कोशिश मत करना, बस सही बने रहो। गवाही वक्त खुद दे देगा।

ii. सपनों को पाने के लिए समझदार नहीं पागल बनना पड़ता है—

सपने वे नहीं होते जो सोने पे देखे जाते हैं।
सपने वे होते हैं जो सोने ही नहीं देते हैं।

iii. अपने मां-बाप का दिल जीत लो सब कुछ जीत जाओगे। वरना इस जहां में सब कुछ जीत कर भी हार जाओगे।

iv. अगर दूसरों के मुकाबले देर से सफलता मिल रही है तो उदास मत होइए क्योंकि छोटा घर जल्दी बनता है और महल बनने में समय लगता है।

v. लम्बा धागा और लम्बी जुबान केवल समस्याएं ही देते हैं। इसलिए धागे को लपेटकर और जुबान को समेटकर रखना चाहिए।

निज ज्ञान ध्यान में

रचयिता—जितेन्द्र दास

सबके दिल में बसने वाले,
वह खुदा दिखाये हैं।
युगों-युगों से ढूंढ़ने वाले,
आज विश्रान्ति पाये हैं॥ 1॥

अब तक तो भूल भरम में,
बेजान पिण्ड पूजाये हैं।
तीरथ मूरत स्थापित कर,
जड़ता में ही भरमाये हैं॥ 2॥

मंदिर मस्जिद तीर्थों में,
अदभुत आश्चर्य दिखाये हैं।
धरम के भय खुदा के नाम,
खूब लूटपाट मचाये है॥ 3॥

हरेक सम्प्रदाय में वही बात,
कामनाओं में ही रिझाये हैं।
जीव बलि चढ़ावा देकर,
मान्यताओं में मूढ़ाये हैं॥ 4॥

बोध विचार करो बन्धुओ,
दिल क्यों घबराये हैं।
निज ज्ञान ध्यान में अब,
'जितेन्द्र' अपनी सुरति समाये हैं ॥ 5॥

चाखा चाहे प्रेमरस, राखा चाहे मान।
एक म्यान में दो खडग, देखा सुना न कान॥
साखी शब्द बहुतक सुना, मिटा न मन का मोह।
पारस तक पहुँचा नहीं, रहा लोह का लोह॥
मन मैला तन ऊजरा, बगुला कपटी अंग।
तासों तो कौवा भला, तन मन एकै रंग॥
आशा तजि माया तजै, मोह तजै अरु मान।
हरष शोक निन्दा तजै, कहै कबीर सन्त जान॥

व्यक्तित्व निर्माण के चार सोपान

लेखक—विवेक दास

हर व्यक्ति चाहता है मेरा व्यक्तित्व अच्छा हो। लोग मुझे जानें-मानें और इज्जत दें। प्रश्न यह है कि यह चाहत कितने लोगों की पूरी हो पाती है। अधिकतम लोग तो जन्म लेते हैं, खाते-पीते, जीते, लड़ते-झगड़ते मर जाते हैं। यदि हम अपने जीवन का मूल्यांकन करें तो हमें लगेगा कि हमारे जीवन में भी अनेक सारी खामियां हैं जो हमें आगे बढ़ने नहीं देती हैं।

तीन बातें होती हैं—प्रकृति, विकृति और संस्कृति। जो मनुष्य जन्म लिया और सहज प्रकृति अनुसार कमा-खा रहा है, प्रकृति का अतिक्रमण नहीं करता वह प्रकृति में जीता है। और जो जन्म तो मानव का लिया किन्तु स्वभाव और कर्म मानवीय नहीं रखता, अपितु विकृत करता है। ऐसे लोग विकृति में जीते हैं। ऐसे लोगों का जीवन अपने लिए तथा औरों के लिए भी दुखद और अभिशापपूर्ण होता है। ऐसे लोगों को ही राक्षस या दानव कहना चाहिए। कुछ लोग जन्म मानव का लेकर संस्कृत हो उठते हैं। अपने आपको बनाते हैं, गढ़ते-छीलते हैं। वे अपने साथ औरों का भी भला करते हैं। उनका जीवन सत्यम्, शिवम् और सुन्दरम् होता है। वे संस्कृति में जीते हैं।

जो लोग स्वयं कष्ट सहकर भी औरों का भला करते हैं, बहुत ऊंची बात है। यह गुण किसी में आ गया तो वह देवरूप ही हो जाता है। ऐसे लोग ही इतिहास रचते हैं। वे सदा स्तुत्य होते हैं। सभी लोग इस स्तर के नहीं हो पाते हैं। ऐसे लोग कम ही होते हैं। हमें अपनी गिनती ऐसे लोगों में लानी चाहिए ताकि अपने साथ औरों का भी भला कर सकें और यही जीवन की सार्थकता भी है। ज्यादा नहीं तो हमें जीवन में इतना तो करना ही चाहिए कि जिससे हमारे किसी भी कर्म और बात-व्यवहार से किसी को दुख और तकलीफ न हो। यदि हम इतना कर लेते हैं तो मानवता की दृष्टि से कहें या अपने स्वयं के लिए अच्छा होगा।

एक प्रसिद्ध भजन है—

भला किसी का कर न सको तो बुरा किसी का मत करना।
अमृत न पिलाने को घर में तो जहर पिलाते भी डरना॥
सत्य मधुर न बोल सको तो झूठ कठिन भी मत बोलो।
मौन रहो सबसे अच्छा कम से कम विष तो मत घोलो॥
घर न किसी का बांध सको तो झोपड़ियां न जला देना।
मरहम पट्टी कर न सको तो छार नमक न लगा देना॥

यदि हम इतना सा भी काम कर लेते हैं तो यह मानवता की बहुत बड़ी सेवा होगी। लेकिन यह भी तब सम्भव है जब हमारा व्यक्तित्व अच्छा होगा। यदि हम अच्छे व्यक्तित्व के मालिक हैं तो किसी के साथ अन्यथा कैसे कर सकते हैं। कोई भी व्यक्ति यदि मानवता विरुद्ध आचरण करता है, किसी को दुख-तकलीफ देता है तो सहज समझा जा सकता है कि उसका जीवन कैसा होगा?

मनुष्य जब जन्म लेता है तो उसका जीवन एक अनगढ़ पत्थर की भांति होता है। जैसे मूर्तिकार पत्थर को गढ़-छीलकर सुन्दर मूर्ति की आकृति दे देता है और वही मंदिर में स्थापित होकर पूजनीय हो जाता है। ठीक ऐसे ही अपने जीवन को गढ़-छीलकर मनुष्य अच्छे व्यक्तित्व का मालिक बन सकता है। अच्छे व्यक्तित्व का निर्माण कैसे हो इसे हम चार चरणों में समझ सकते हैं—

1. आत्म निरीक्षण— यदि हम अच्छे व्यक्तित्व का मालिक बनना चाहते हैं, तो पहला कदम है आत्मनिरीक्षण का। हमें अपने जीवन में अनुशीलन करना होगा कि मेरे जीवन में क्या सही है और क्या गलत है? क्या उचित है और क्या अनुचित है?

प्रायः हम दूसरों के बारे में जानने की बहुत कोशिश करते हैं और विश्लेषण भी करते हैं कि वह ऐसा है, वह वैसा है। किन्तु हम अपने आपका विश्लेषण नहीं कर पाते जैसा कि होना चाहिए। हमें दूसरों की बुराई से हानि

नहीं है किन्तु अपनी बुराई से हानि है। इसलिए आवश्यक है कि हम अपने अन्दर झांकें कि वास्तव में मेरे अन्दर क्या है! अच्छाई अधिक है कि बुराई। जब तक हम अपने अन्दर झाकेंगे नहीं तब तक कैसे पता चलेगा कि हमारे अन्दर क्या है? जो भी महान व्यक्तित्व हुए हैं उनका एक खास गुण रहा है कि वे अच्छाई सदा दूसरों में देखते रहे और बुराई अपने अन्दर खोजते रहे।

संत सुकरात से किसी ने पूछा—"आप ज्ञानी हैं?" तो उन्होंने कहा—हां, मैं ज्ञानी हूं, क्योंकि मैं अपने अज्ञान को जानता हूं।

सद्गुरु कबीर ने भी कहा है—

बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न मिलिया कोय।
जो दिल खोजा आपना, मुझसा बुरा न कोय॥

मैं बुरा व्यक्ति खोजने चला तो मुझे कोई बुरा व्यक्ति नहीं मिला पर जब अपने अन्दर झांका तो लगा मुझसे बुरा व्यक्ति कोई नहीं है। वास्तव में हमें बुराई औरों में नहीं किन्तु अपने अन्दर ही देखने की आवश्यकता है। हम दूसरों की बुराई से ज्यादा परेशान नहीं होते अपितु अपनी ही बुराइयों से परेशान होते हैं। हमारा व्यक्तित्व दूसरों की बुराई से कलुषित नहीं होता अपितु अपनी ही बुराइयों से कलुषित होता है। हमें दुख भी अपनी ही बुराई से होता है।

अतएव व्यक्तित्व विकास या व्यक्तित्व निर्माण का प्रथम सोपान है आत्म निरीक्षण। इससे हम अपनी वास्तविकता को समझ पाते हैं। अपने गुण-अवगुण की परख कर पाते हैं। जब हम अपने अवगुणों को समझ पातें हैं तो फिर हम अपना सुधार करने के क्षेत्र में आगे बढ़ने लगते हैं।

2. आत्म सुधार—आत्म सुधार व्यक्तित्व निर्माण का दूसरा चरण है। जब हमने अपने जीवन का अनुशीलन करके देख लिया कि मुझमें क्या अच्छाई और क्या बुराई है और फिर हम बुराइयों को निकालने का काम करने लगते हैं तो हमारा सुधार होने लगता है। जीवन में यदि हम तरक्की करना चाहते हैं, वह किसी भी दिशा में हो व्यवहार या परमार्थ हम दोषों को लेकर तरक्की नहीं कर सकते। जैसे लोहे का दुश्मन और कोई नहीं; उसके ऊपर लगा मोर्चा या काठ ही होता है। ठीक वैसे ही हमारा दुश्मन और कोई नहीं हमारे ही मानसिक विकार हैं, दोष और दुर्गुण हैं। वे ही हमारे जीवन को नष्ट कर देते हैं।

जीवन में चाहे कितने भी दोष और दुर्गुण क्यों न हो, चाहे कोई कितना भी पतित क्यों न हो यदि वह चाहे तो अपने आपको दोषों से मुक्त कर सकता है। आप इतिहास उठाकर देख सकते हैं, पतित से पतित व्यक्ति भी अपने दोषों को समझने के पश्चात दोषों से मुक्त होकर आत्म सुधार और आत्म कल्याण का काम किये हैं।

यदि हममें आत्म सुधार की भावना है तो हमें धीरे-धीरे अपने छोटे-छोटे दोषों को दूर करने का प्रयास करना होगा। पहले तो कुछ कठिन जान पड़ेगा, क्योंकि इनसे प्रेम जो हो गया है। आपको लगेगा क्या दोषों से भी कोई प्रेम करता है। हम अपने दोषों से प्रेम करते हैं। विचार करें, निंदा करना दोष है, झूठ बोलना दोष है, दूसरों में बुराई खोजना दोष है, ईर्ष्या करना दोष है, चोरी-हिंसा-व्यभिचार आदि दोष हैं, किन्तु हम इनसे प्रेम करते हैं। प्रेम करते हैं इसीलिए इनका हमारे जीवन में स्थान बना हुआ है। जिस दिन हम इनकी उपेक्षा करने लगेंगे। इनसे हमें घृणा होने लगेगी तो ये कहीं नजर नहीं आयेंगे। हमारे जीवन से दूर हो जायेंगे।

हमें एकाएक बड़े और कठिन दोषों को दूर करने के लिए नहीं लगना है अपितु जो जीवन में बहुत ही सामान्य और छोटा दोष लगता हो इसको पहले दूर करने का प्रयास करना है फिर क्रमशः बड़े दोषों को दूर कर सकते हैं। सद्गुरु कबीर ने कहा है—

उथले रहहु परहु जनि गहिरे मति हाथहु का खोवहु हो।

साहेब कहते हैं उथले में ही रहना, एकाएक गहराई में मत चले जाना। यदि हम बड़े दोष को ही पहले दूर करने का प्रयास करने लगे और न कर पाये तो हार मान कर बैठ जायेंगे। हम सामान्य, छोटे दोषों को दूर कर लेंगे तो धीरे-धीरे हमारा आत्मबल बढ़ने लगेगा और हम बड़े दोषों को भी अपने जीवन से आसानी से दूर कर पायेंगे। पूज्य गुरुदेव श्री अभिलाष साहेबजी ने कहा है—

त्याग से ही त्याग का बल बढ़ सकेगा।
जो करे शुरुआत वह ही चढ़ सकेगा॥

त्याग करने से ही त्याग की शक्ति बढ़ती है। जब छोटे-छोटे दोष-दुर्गुण को हम दूर करने लगेंगे तो आत्मबल की वृद्धि होगी और लगेगा कि मैं अपना पूरा सुधार कर सकता हूं और हम बड़े दोषों से भी मुक्त हो सकेंगे।

3. आत्म निर्माण—जैसे किसान के खेत में बहुत ज्यादा खरपतवार उग गया हो तो वह उसे पहले साफ करता है। फिर खेत को गोड़ कर मिट्टी को मुलायम बनाता है, तब जाकर खेत में बीज और खाद-पानी डालता है और सतत जागरूक होकर देखभाल और परिश्रम करता है तब कालान्तर में उसे फसल की प्राप्ति होती है। ठीक ऐसे ही जीवनरूपी खेती में जब हम अनुशीलन करते हैं तो दोष-दुर्गुण रूपी खरपतवार का एहसास होता है कि यही हमारे व्यक्तित्व के बाधक और दुख देने वाले हैं तत्पश्चात उन्हें निकालने लगते हैं तो जीवन साफ होने लगता है, बुराइयां दूर होने लगती हैं। इसके पश्चात जब जीवन में शील, क्षमा, दया, संतोष आदि सद्गुणों का आगमन होने लगता है तो हमारा जीवन सुवासित होने लगता है। जब हम सद्गुण और सदाचरणों को आत्मसात करके जीने लगते हैं तो हमारा निर्माण होने लगता है। हम अपने आपको बनाते हैं।

यदि मैं झूठ तो नहीं बोलता किन्तु सत्य नहीं बोलता, हिंसा तो करता नहीं किन्तु दया का भाव नहीं रखता, किसी से कुछ लूटता तो नहीं किन्तु किसी का सहयोग नहीं करता, कटु तो कहता नहीं किन्तु मीठा नहीं बोलता, तो यह पूर्णता नहीं है। आत्म निर्माण के क्रम में हम उन सद्गुणों और सदाचरणों को जीवन में अपनाते और जीते हैं जिससे हमारा जीवन तो सुवासित होता है मानवता के लिए भी वह हितकर होता है।

4. आत्मविकास—चौथा सोपान है आत्मविकास। जब हम सूक्ष्म गुणों की आसक्ति छोड़कर समता भाव को जागृत करते हैं तो यह आत्मविकास है। इस स्थिति में न कोई अपना होता है और न कोई पराया। सबके प्रति समभाव का होना ही आत्मविकास है। चित्त का राग-द्वेषात्मक भाव तिरोहित हो जाता है। जब तक हम तनिक भी राग या द्वेष से बंधे रहेंगे आत्मविकास सम्भव नहीं है। गीता में बड़ा ही सुन्दर कहा है—

योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गंत्यक्त्वा धनंजय।
सिद्धयसिद्धयोः समोभूत्वा समत्वं योग उच्यते॥

हे धनन्जय! तू आसक्ति को त्याग कर तथा सिद्धि और असिद्धि में समता बुद्धि वाला होकर योग में स्थित होकर कर्तव्य कर्मों को कर। समत्व ही योग कहलाता है।

समता ही योग है और समता ही अध्यात्म है। समता की स्थिति में चित्त का ढलना ही जीवन की उच्चता है। और यही आत्म विकास है।

इसी स्थिति में आरूढ़ होकर सद्गुरु कबीर कह उठते हैं—

कबीर खड़ा बाजार में, सबकी मांगे खैर।
ना काहू से दोस्ती, ना काहू से वैर॥
"ज्यों की त्यों धरि दीन्ही चदरिया"

पहले अपने आपका अनुशीलन करना और समझना कि मेरे अन्दर क्या अवगुण है। मैं किन बातों को लेकर दुखी होता हूं सबको समझना, अपने गुण-दोषों की परख करना, समझना आत्मनिरीक्षण है, तत्पश्चात अपने अवगुणों, दोषों को निकालने के लिए प्रयत्नवान होना जिससे हमारे अन्दर सुधार होता है आत्म सुधार है। फिर अपने अन्दर सद्गुणों और पवित्र भावों का संर्वधन करना आत्म निर्माण है और सूक्ष्म गुणों की आसक्ति को भी छोड़कर समता भाव को जागृत करना आत्म विकास है।

प्रकृति ने हमें जीवन दिया है। हम आत्म विकास करके अपनी स्थिति ऊंची करते हैं कि आत्महास करके अवनति करते हैं यह हम पर निर्भर करता है। प्रकृति ने सबको समान अवसर प्रदान किया है। हम इस अवसर का सदुपयोग करके इस जीवन को सफल बना सकते हैं। जो संभावना बुद्ध, कबीर और महावीर के पास थी वह हमारे पास भी है। बस उसे समझना और चलना है—

जो तू चाहे मूझको, छाड़ सकल की आस।
मुझ ही ऐसा होय रहो, सब सुख तेरे पास॥

❑

परमार्थ पथ

सद्गुरु ज्ञान ठिकाना है

आज-कल में अपना माना हुआ शरीर छूट जायेगा, और उसके साथ शरीर के सारे व्यवहार और लगाव छूट जायेंगे। इस तथ्य को समझकर आज से ही सारा लगाव छोड़ दो, मन की सारी अहंता-ममता और लालसा छोड़ दो। फिर इस जीवन में परम शांति का अनुभव करो। जो आज शांति का उपभोग नहीं करेगा तो कब करेगा? जीवन स्वप्न के तुल्य है। सब कुछ क्षण-क्षण भागा जा रहा है। इसलिए कहीं ममता न बांधो, अपितु सब कुछ से अनासक्त और निष्काम रहो। पूर्ण निष्कामता ही जीवन्मुक्ति है। मनुष्य जीवनपर्यंत भ्रम में जीता है। जीवन में आये हुए सारे द्वंद्व हवा के झोंके की तरह भागकर सदैव के लिए खो जाने वाले हैं; तस्मात् निर्भय रहो।

* * *

कुछ न सोचना महा ध्यान है। जिस बोधवान की सारी तृष्णा शांत हो गयी है, उसे कुछ न सोचना सुकर है। जो रहने वाला नहीं है, उसे क्यों सोचना। पूर्ण दिव्य स्थिति को प्राप्त संत भी मन से सतत सावधान रहता है। मन की दशा विचित्र है। थोड़ी शिथिलता आते ही मन अन्यथा स्मरण करा सकता है। बोध की दृढ़ता का अर्थ ही यही है कि असावधानी न आये। हर समय, निरंतर मन को निर्मल रखना साधक की साधना है। यह काम अत्यंत सरल है। जीव को सुख ही अभीष्ट है और मन की पूर्ण निर्मलता में ही स्थिर और निर्भय सुख है। शेष तो जो कुछ है, दिखावा है, क्षणिक है, जाने वाला है। "अबकी बार जो होय चुकाव। कहहिं कबीर ताकी पूरी दाव।"

* * *

जीव के साथ कुछ है ही नहीं। सारा संबंध क्षणिक है। अपना मन संसार में लगाने वाले को अंतर्मुखता नहीं होती है। अंतर्मुख हो जाना जीवन का परम और चरम सुख है। इस सुख में भय नहीं है। संसार के सुख में उसके छूट जाने का भय है और संसार का सुख वासना बनाकर भटकाता है। इसलिए संसार के सुख में नहीं रमना चाहिए। अपितु अंतर्मुखता के सुख में रमना चाहिए। निर्विकल्प समाधि उच्चतम समाधि है; जिसके पूर्ण सिद्ध होने पर संसार-बीज नष्ट हो जाता है।

* * *

जड़ दृश्य अनात्म है, अनित्य है, और उसका संबंध दुखद है। अतएव उसका निरंतर अभाव करते रहना मोक्ष रहनी है। "फिर नहिं आवना यहि देश।" इस जड़-दृश्य-देश में रहकर क्लेश है। इसलिए इसमें पुनः नहीं आना है। जो साधक किसी व्यक्ति विशेष की उपासना अंतिम उपासना मानते हैं, वे महा भ्रम में हैं। लोग तो ऐसे हैं कि वे स्वयं विरक्त हैं, परंतु किसी दंपती की—पति-पत्नी की उपासना करते हैं और उसे वे अंतिम उपासना मानते हैं। इससे अधिक भ्रम और क्या होगा? मोक्ष का अर्थ ही सबसे छूट जाना है। मैं शुद्ध चेतन हूं। मुझे मन और इंद्रियों द्वारा जड़-दृश्य प्रतीत होता है और वह दुख देता है। मोक्ष है जड़ दृश्य का पूर्ण अभाव करते रहना।

* * *

आसन पर, रास्ते में, खड़े, बैठे, लेटे, सब समय आत्मसंतुष्ट रहना जीवन का फल है और यही जीवन है। हमारा अभेद्य किला आत्मा है, स्वस्वरूप है। स्वरूपलीनता अपनी बादशाहत है। हर समय यह याद रखना कि मेरा इस संसार में कुछ नहीं है, मेरा अपना आत्म-अस्तित्व मात्र है, इतना ही सार उपदेश है। इस तथ्य को सदैव स्मरण में रखना और हरक्षण आत्मसंतुष्ट रहना साधना और साध्य है।

* * *

मिलना-जुलना, कहना-सुनना, लेना-देना, देखना-सुनना, छूना-सूंघना, खाना-पीना, करना-धरना, सब क्षणिक है। यह सब पीछे शून्य हो जाता है। परंतु इनके द्वारा बने संस्कार हमारे जीवन के बंधन या मोक्ष के

कारण बनते हैं। इसलिए हमें इन सबके बीच बहुत सावधान होकर निपटना चाहिए। जीवन का कुछ भी व्यवहार नहीं रहेगा, क्योंकि जीवन ही नहीं रहेगा, परंतु इसमें बने संस्कार हमारे पीछे चलकर हमें सुख या दुख देंगे। बंधन, विवशता, मन के उद्वेग दुख देंगे और शांति, स्थिरता, संतोष सच्चे सुख के कारण बनेंगे इसलिए इस क्षणिक जीवन और क्षणिक संबंध में बड़ी सावधानी से सारा बरताव करो। कहीं भी लोभ, लालच और संबंध की गरमाहट में न पड़ो। मेरे साथ कुछ नहीं रहेगा।

* * *

अहंकार व्यर्थ है, क्योंकि सारा संबंध क्षणिक है। जो रह जाने वाला नहीं है उसका अहंकार कैसा! हम तो यायावर हैं, घूमने वाले हैं। चार दिन के लिए यहां निवास है। यहां का कमरा, कमरे की वस्तुएं, पास की गलियां, अन्य मकान, यहां से जाने के बाद अदृश्य हो जायेंगे। इनका स्मरण भी नहीं होगा। कभी-कभी इनमें से कुछ का धुंधला स्मरण होगा। इस जीवन में अगणित घरों में निवास किये, जिनमें से अधिक विस्मृति के गर्त में डूब गये हैं। यहां तक कि अपने माने गये शरीर की अवस्थाएं स्वप्न हो गयीं। सारा दृश्य निरंतर भागा जा रहा है। मेरे साथ निरंतर मैं रहता हूं। अतएव इदम् को छोड़कर सदैव अहम् में ही रहना चाहिए। इदम् जड़-दृश्य है, अहम् स्वचेतन स्वरूप है।

* * *

इस संसार में नया कुछ नहीं है। सबसे जुड़कर अपने आप का विस्मरण रखना भी पुराना है। नयी एक ही बात है, वह है सबसे अनासक्त, असंग एवं निराला होकर अपने आप से जुड़ना, और निरंतर जुड़े रहना। सारा संसार भय से पीड़ित होकर रो रहा है। निर्भयता तो अविनाशी स्वरूपस्थिति में है। जहां कहीं का मोह नहीं है, उस अनासक्त मन में ही निर्भयता रह सकती है। तुम अपने को संसार में फैलाओ मत, अपितु सब तरफ से समेट लो और अपने आप में डूब कर अभय और अमृत हो जाओ।

* * *

साधक को अपना मन सदैव आत्म-चिंतन में ही रखना चाहिए, अथवा समय-समय से कुछ न सोचकर आत्मस्थ एवं स्वरूपस्थ रहना चाहिए। यह शारीरिक यात्रा अयथार्थ कैसे कहें, क्योंकि सामने है, परंतु यह क्षणिक प्रवाहों का धुआं का धरहरा है। हमें जो मिलता है, वह रहता नहीं है और इस छूटने वाले संसार में हमें जीवनपर्यंत गुजरना है। बस, हमारी यही सावधानी होना चाहिए कि हम हरक्षण आत्माराम रहें, आत्मचिंतन, आत्मस्थिति एवं स्वरूपलीनता में रहें। मैं के अलावा मेरा कुछ हो नहीं सकता। इसलिए स्वरूपलीनता ही समझदारी है।

* * *

गाढ़ी नींद में जीव परमानंद को देखता है, क्योंकि वह सुषुप्ति है, स्व-अपीति है, अपने को पा जाना है, परंतु जाग्रत में पाप को देखता है, दुख को देखता है, क्योंकि उसमें विकारी तथा अनात्म जगत उसके सामने हो जाता है और स्वप्न में भी यही बात रहती है। जो साधक अनात्म जगत-दृश्य से हर क्षण विरत रहकर स्वरूपभाव, आत्मभाव में रहते हैं, आत्माराम रहते हैं, सदैव निज पारखस्वरूप-भाव में रहते हैं, वे सब समय परमानंद एवं परमशांति में रहते हैं। यही मोक्ष-साधना है, यही मोक्ष-स्थिति है। अनात्म जगत-दृश्य हमारे साथ रहने वाला नहीं है, अतएव उसका पूर्ण अभाव कर स्वरूपभाव में रहना सच्ची समझदारी है। इसी में दुखों का अंत है।

* * *

संसार का सारा निर्मित पदार्थ किस तरह नश्वर है, यह तथ्य नजरोनजर है। इसीलिए अपना मन सांसारिक वस्तुओं में नहीं लगाना चाहिए। मन तो केवल आत्मा में ही लगाना चाहिए जो निज स्वरूप है। मेरा परम अमृतधाम मेरा आत्मा है, मेरा होना है। मैं में ही मैं सदैव रमता रहूं, ऐसी ही बुद्धि निरंतर बनाकर रखना चाहिए। मिलने वाला सारा जड़-दृश्य भागा जा रहा है। वह हमारे साथ रह नहीं सकता, किंतु मेरा अपना आत्मा मुझसे कभी बिछुड़ नहीं सकता।

❑

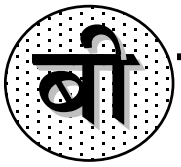

बीजक चिंतन

दशरथ सुत तिहुँ लोकहि जाना

शब्द-109

लोग बोले दूरि गये कबीर, ये मति कोइ कोइ जानेगा धीर॥
दशरथ सुत तिहुँ लोकहि जाना, राम नाम का मर्म है आना॥
जेहि जिव जानि परा जस लेखा, रजु का कहै उरग सम पेखा॥
यद्यपि फल उत्तम गुण जाना, हरि छोड़ि मन मुक्ति उनमाना॥
हरि अधार जस मीनहि नीरा, और जतन कछु कहैं कबीरा॥

शब्दार्थ—मति= समझ, राय, अभिप्राय। धीर= स्थिर-चित्त, विवेकवान। मर्म= भेद। आना= दूसरा। लेखा= अंदाज, विचार। रजु= रस्सी। उरग= सांप। पेखा= देखा। हरि= अंतरात्मा, चेतनदेव। उनमाना= अनुमान, कल्पना।

भावार्थ—लोग कहते हैं कि कबीर बहुत दूर पहुंच गये हैं। परन्तु इस 'दूर' का अभिप्राय कोई बिरला स्थिरचित्त विवेकवान ही समझ सकता है॥ 1॥ दशरथ-सुत श्रीराम की तीनों लोकों में प्रसिद्धि है; परन्तु राम-ऐसा नाम जिस सार्वभौमिक उपासनीय तत्त्व का है उसका रहस्य कुछ दूसरा ही है॥ 2॥ जिस व्यक्ति में जैसी समझ होती है, जो जैसा अनुमान करता है, वैसा राम के विषय में कह देता है। देखो, कितने लोग अपने दृष्टि-दोष से रस्सी को सांप समझ लेते हैं॥ 3॥ यद्यपि दशरथ-सुत श्रीराम में श्रद्धा होने से फल उत्तम होंगे, क्योंकि जाना जाता है कि उनमें अनेक उत्तम गुण थे; परन्तु लोगों की भूल यह है कि उनका मन अपनी अंतरात्मारूपी राम को छोड़कर दशरथ-सुत राम की भक्ति में एवं उनमें मिलकर मुक्ति की कल्पना करने लगता है॥ 4॥ परंतु कबीर तो मुक्ति के लिए कुछ दूसरा ही साधन बता रहे हैं, वह है जलमीनवत निरंतर अपनी आत्मारूपी हरि में रमण करना॥ 5॥

व्याख्या—इस शब्द में सद्गुरु ने मोक्ष के आश्रय-भूत परमतत्त्व का सुन्दर एवं सटीक विवेचन किया है। वे इस शब्द में पहली पंक्ति कहते हैं "लोग बोले दूरि गये कबीर, ये मति कोइ कोइ जानेगा धीर।" लोग कहते हैं कि कबीर बहुत दूर पहुंच गये हैं। परन्तु यहां बहुत दूर पहुंच जाने का अर्थ क्या हो सकता है? क्या कोई कल्पित धाम, साकेतलोक, ब्रह्मलोक, सत्यलोक, गोलोक, शिवलोक आदि? नहीं, ऐसा कुछ नहीं है। कहीं कोई लोक नहीं है जहां कबीर पहुंच गये हैं। कबीर तो अपने चेतन स्वरूप में स्थित हैं, वे अपनी आत्मा में लीन हैं। वे सांसारिक विषयों से अलग हो गये हैं। यही मानो वे दूर पहुंच गये हैं। जो मन की सारी कल्पनाओं को छोड़कर अपने स्वरूप में स्थित है वही मानो दूर चला गया है। इसलिए सद्गुरु कहते हैं "ये मति कोइ कोइ जानेगा धीर" कबीर दूर चले गये, इस कथन का अभिप्राय कोई परम विवेकी ही समझ सकेगा। परमतत्त्व में स्थित पुरुष का कोई अन्य लोक नहीं होता। श्रुति कहती है—"हमारा यह आत्मा ही हमारा अपना लोक है। इसलिए ज्ञानी उसी आत्मलोक की प्राप्ति की अभिलाषा रख, घर से बे-घर हो प्रवर्जित होता है।"[1] कबीर साहेब आत्मा को राम कहते हैं जिसके विषय में वे आगे प्रकाश डालते हैं।

"दशरथ सुत तिहुँ लोकहि जाना, राम नाम का मर्म है आना।" दशरथ-सुत राम का नाम तीनों लोकों में प्रसिद्ध है। यहां तीन लोक लक्षणा मात्र है। इसका अर्थ है कि राम के नाम से दशरथ-सुत लोगों में ज्यादा प्रसिद्ध हैं। परन्तु सद्गुरु कहते हैं कि जो राम सबका उपासनीय है वह कुछ दूसरा ही है। वस्तुतः वह है सबकी अपनी अंतरात्मा। कहा है—"योगीजन जिसके विषय में रमण करते हैं, वह राम है।"[2] सद्गुरु ने पीछे अनेक स्थलों पर बताया है कि श्रीराम-कृष्ण[3] आदि मनुष्य थे। वे कभी थे। उनको बीते बहुत दिन हो गये। वे तुम्हारा कल्याण नहीं कर सकेंगे। तुम्हारा कल्याण आत्मज्ञान तथा आत्मस्थिति से होगा। कोई भी देहधारी पहले हुआ हो या वर्तमान में विद्यमान हो, यदि वह पवित्र आचरण वाला है तो उससे अच्छी प्रेरणा ली जा सकती है, परन्तु मोक्ष उसके या

---

1. नोऽयमात्माऽयं लोकः एतमेव प्रव्राजिनो लोकमिच्छन्तः प्रव्रजन्ति। (बृहदारण्यक उपनिषद् 4/4/2)
2. रमन्ते योगिनो यस्मिन् इति रामः।
3. रमैनी 75, शब्द 8, 18, 110 आदि।

अन्य किसी के प्रेम का न फल हो सकता है और न उनमें हमारी स्थिति हो सकती है। सारी वासनाओं का त्यागकर निज चेतनस्वरूप में स्थिति ही मोक्ष है। इसके अलावा किसी देहधारी में अनुराग मात्र मोक्ष कैसे हो सकता है! वह तो उलटकर बन्धन बन जायेगा।

कबीर साहेब के काल से करीब चार सौ वर्ष पूर्व से ही दशरथ-सुत राम की परमात्मा के रूप में समाज में प्रतिष्ठा हो चली थी। ईसा के तीन सौ वर्ष पूर्व जब वाल्मीकीय रामायण का एक छोटा रूप बना, तब उसमें श्री राम को एक उच्च गुणसंपन्न राजकुमार के रूप में चित्रित किया गया था। परन्तु इसके पहले श्रीकृष्ण भगवान के रूप में प्रतिष्ठित हो गये थे। अतएव उनकी देखा-देखी ईसा के सौ साल पहले श्रीराम चारों भाई विष्णु के अंशावतार के रूप में मान लिये गये। परन्तु श्रीराम पूर्ण परमात्मा के रूप में ईसा के एक हजार वर्ष बाद माने गये। वाल्मीकीय रामायण में श्रीराम को दशरथ, कौसल्या, भरत, लक्ष्मण, सीता आदि में से कोई भी ईश्वर नहीं जानता है। श्रीराम वन जाते समय भरद्वाज आश्रम पर जाते हैं और वे भरद्वाज को पांच[1] बार भगवान कहते हैं। वे सुतीक्ष्ण को भी भगवान कहते हैं,[2] और अगस्त्य को भगवान[3] तथा अपना गुरु कहते हैं "गुरुर्नः।"[4] वन में सभी ऋषि श्रीराम को प्रिय अतिथि मानते हैं, कोई उन्हें भगवान नहीं कहता। वाल्मीकीय रामायण में कहीं भी श्रीराम के लिए भगवान शब्द का प्रयोग नहीं दिखता। अतएव श्रीराम को ईश्वर मानने की कल्पना बहुत पीछे हुई है।

कबीर साहेब तत्त्वविवेकी एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण वाले पुरुष थे। उनको यह बात बड़ी असंगत लगी कि संसार में पैदा हुआ कोई क्षणभंगुर मनुष्य संसार का कर्ता-धर्ता है। इसके अलावा मोक्ष-विचार में तो साफ है कि व्यक्ति का अपना आत्मस्वरूप ही उसका निधान हो सकता है न कि कोई दूसरा देहधारी। इसलिए साहेब ने यह अमर वाक्य कहा "दशरथ सुत तिहुँ लोकहि जाना, राम नाम का मर्म है आना।" कबीर साहेब की यह पंक्ति उत्तरी भारत में प्रचलित थी, काशी में तो गूंज रही थी। कबीर साहेब के बाद गोस्वामी तुलसीदास जी हुए। उनका भी कार्यक्षेत्र काशी रहा। गोस्वामी जी श्रीराम को परब्रह्म परमात्मा मानने में अग्रणी रहे। अतएव उन्हें कबीर साहेब की यह पंक्ति बहुत खटकी। इसलिए उन्होंने अपने रामचरितमानस में नये-नये उपोद्घात रचे। शिव-पार्वती संवाद, याज्ञवल्क्य-भरद्वाज संवाद तथा काकभुशुंडि-गरुड़ संवाद की वाल्मीकीय रामायण में गंध भी नहीं है। परन्तु श्रीराम को परमात्मा सिद्ध करने के लिए उन्होंने इन सारे संवादों की रचना कर डाली। गोस्वामी जी ने इन संवादों के आधार में इन पात्रों के द्वारा श्रीराम को अवतार न मानने वालों को कीट-कीट कर गालियां दीं। यहां केवल एक उदाहरण देना पर्याप्त होगा जहां गोस्वामी जी ने सद्गुरु कबीर की दशरथसुत वाली पंक्ति को अपने मन में रखकर शिव-पार्वती के काल्पनिक संवाद के सहारे कबीर साहेब का नाम बिना लिये उन्हें या उन-जैसे चिन्तकों को गाली दी है।

गोस्वामी जी के अनुसार पार्वती ने शिव जी से पूछा—"वह उपासनीय राम अयोध्या के राजा दशरथ के पुत्र ही हैं या अजन्मा, निर्गुण तथा अगोचर कोई दूसरा है? यदि वह राजा दशरथ का पुत्र है तो ब्रह्म कैसे, जिसकी पत्नी के वियोगजनित पीड़ा में बुद्धि अत्यन्त बावली हो गयी है। एक तरफ उसका भ्रमित चरित्र देखकर तथा दूसरी तरफ उसकी महिमा सुनकर मेरी बुद्धि चकित हो गयी—

*रामु सो **अवध नृपति सुत** सोई। की अज अगुन अलख गति कोई॥*
*जौं **नृपतनय** त ब्रह्म किमि, नारि बिरह मति भोरि।*
*देखि चरित **महिमा** सुनत, भ्रमित बुद्धि अति मोरि॥*

(रामचरितमानस, 1/108)

गोस्वामी जी के अनुसार इसका उत्तर शिव जी इस प्रकार देते हैं। डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने 'कबीर' में इस संदर्भ में इन्हीं पंक्तियों को उद्धृत करते हुए लिखा है "इसके उत्तर में गोस्वामी तुलसीदास जी ने शिव जी के मुख से जो उत्तर दिलवाया है वह ध्यान से सुनने लायक है"—

---

1. वाल्मीकीय रामायण, 2/54/13,16, 24, 26 तथा 37 ।
2. वाल्मीकीय रामायण, 3/7/6, 3/8/5 ।
3. वही, 3/12/23 ।
4. वही, 3/13/10 ।

एक बात नहिं मोहि सोहानी। जदपि मोहबस कहेहु भवानी॥
*तुम जो कहा **राम कोउ आना।** जेहि श्रुति गाव धरहिं मुनि ध्याना॥*
कहहिं सुनहिं अस अधम नर, ग्रसे जो मोह-पिसाच।
पाषंडी हरिपद बिमुख, जानहिं झूठ न साँच॥ 114॥
अग्य अकोबिद अंध अभागी। काई विषय मुकुर-मन लागी॥
लंपट कपटी कुटिल बिसेखी। सपनेहु संत-सभा नहिं देखी॥
कहहिं ते बेद-असम्मत बानी। जिन्हके सूझ लाभु नहिं हानी॥
मुकुर मलिन और नयन बिहीना। राम रूप देखहिं किमि दीना॥
जिनके अगुन न सगुन बिबेका। जल्पहिं कल्पित बचन अनेका॥
हरि माया बस जगत भ्रमाहीं। तिन्हहिं कहत कछु अघटित नाहीं॥
बातुल भूत बिबस मतवारे। ते नहिं बोलहिं बचन बिचारे॥
जिन्ह कृत महा मोह मद पाना। तिन्हकर कहा करिय नहिं काना॥
अस निज हृदय बिचारि, तजि संसय भजु रामपद।
सुनु गिरिराज कुमारि, भ्रमतम रबिकर बचन मम॥ 115॥

× × ×

राम सच्चिदानंद दिनेसा। नहिं तहँ मोहनिसा लवलेसा॥
सहज प्रकास रूप भगवाना। नहिं तहँ पुनि बिग्यान बिहाना॥
हरख-बिसाद ज्ञान-अज्ञाना। जीव-धर्म अहमिति-अभिमाना॥
राम ब्रह्म ब्यापक जग जाना। परमानंद परेस पुराना॥
पुरुष प्रसिद्ध प्रकासनिधि, प्रकट परापर नाथ।
***रघुकुल-मनि मम स्वामि सोइ,** कहि सिवनायेउ माथ॥ 116॥*

× × ×

*सब कर परम प्रकासक जोई। राम अनादि **अवधपति** सोई॥*
यहि बिधि जग हरि-आश्रित रहई। जदपि असत्य देत दुख अहई॥
जौ सपने सिर काटै कोई। बिन जागैं दुख दूरि न होई॥
जासु कृपा अस भ्रम मिटि जाई। गिरिजा सोइ कृपालु रघुराई॥
आदि-अन्त कोइ जासु न पावा। मति-अनुमान निगम अस गावा॥
बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना। कर बिनु करम करइ बिधि नाना॥
आनन रहित सकल रसभोगी। बिनु बानी बकता बड़ जोगी॥
तनु बिनु परस नयन बिनु देखा। ग्रहइ घ्रान बिनु बास असेखा॥
अस सब भाँति अलौकिक करनी। महिमा जासु जाइ नहिं बरनी॥
जेहि इमि गावहिं बेद बुध, जाहिं धरहिं मुनिध्यान।
***सोई दसरथ-सुत** भगत हित, कोसलपति भगवान॥ 118॥*

गोस्वामी जी के इन मोटे अक्षरों पर ध्यान दीजिये—**अवध नृपति-सुत, नृपतनय, राम कोउ आना, रघुकुल-मनि मम स्वामी सोई, अवधपति** तथा **सोइ दसरथ-सुत**—ये शब्द तथा भाव कबीर साहेब की इसी पंक्ति-जैसे भाव के उत्तर में लिखे गये हैं—"दशरथ सुत तिहुँ लोकहि जाना। रामनाम का मर्म है आना।"

प्रश्न होता है कि क्या कबीर साहेब की उक्त पंक्ति का उत्तर गोस्वामी जी दे सके हैं? वे उत्तर तो नहीं दे सके हैं, हां, उन्होंने कबीर साहेब का नाम लिये बिना उन्हें या उन-जैसे तत्त्वचिंतकों को करीब दो दर्जन गालियां दे डाली हैं। यह बात तो पहले ही निवेदित की गयी है कि आदि वाल्मीकीय रामायण में शिव-पार्वती संवाद है ही नहीं। पूरी वाल्मीकीय रामायण में शिव जी कहीं श्रीरामचन्द्र के भक्त नहीं हैं। हां, श्रीराम शिव जी के भक्त अवश्य हैं। लंका से लौटते समय जब श्रीराम रामेश्वर आये हैं तब उन्होंने सीता जी से कहा है—"यहां पर पहले महादेव जी ने मेरे ऊपर कृपा की थी"—अत्र पूर्वं महादेवः प्रसादमकरोद विभुः।"[1] परन्तु गोस्वामी जी कल्पनाशील एवं प्रतिभावान हैं। वे अपनी कल्पनाशक्ति एवं प्रतिभा का दुरुपयोग कर असत्य कहानी गढ़ते हैं और एक राजपुत्र श्रीराम को अनंत ब्रह्मांडनायक सिद्ध करने के लिए वेद-शास्त्र, इतिहास, विवेक सब कुछ को एक तरफ रखकर अपनी जिद्द पर अड़ जाते हैं। चारों वेदों तथा वैदिक छहों शास्त्रों में तथा समस्त वैदिक साहित्य में अवधपति श्रीराम की कहीं चर्चा ही नहीं है, फिर उनके परब्रह्म होने की चर्चा का तो प्रश्न ही नहीं उठता। इतिहास देखिए तो ईसा के हजार वर्ष बीतने पर श्रीराम को पूर्ण परमात्मा मानने की बात पुराणों तथा अध्यात्म रामायण में आयी है। विवेक तो साक्षी हो ही नहीं सकता कि एक क्षणभंगुर मनुष्य अनंत विश्व का स्रष्टा, पालक तथा संहर्ता है। फिर भी गोस्वामी जी इस बात के पीछे पड़ गये हैं, और वे एक झूठ सिद्ध करने के लिए अनेक भोली बातें करते तथा काल्पनिक कहानियां गढ़ते हैं। गोस्वामी जी मानते हैं कि जो श्रीराम को परमात्मा नहीं मानता वह 'बेद-असम्मत बानी' कहता है। गोस्वामी जी जब वेद नहीं पढ़े थे, तो उनको ऐसा दावा नहीं करना चाहिए था और यदि वेद पढ़े थे, तब वे ऐसी वेद-विरुद्ध बातें क्यों करते हैं? वस्तुतः कबीर साहेब का अवतारवाद-विरोधी विचार ही वेदसम्मत है, गोस्वामी जी का अवतारवाद वेदसम्मत नहीं है। इसके लिए पाठक स्वयं वेद पढ़कर जान सकते हैं।

1. वाल्मीकीय रामायण, युद्धकांड, सर्ग 123, श्लोक 20 ।

आजकल तो वेद हिन्दी में भी उपलब्ध हैं। अवतारवाद न मानने वालों को या श्रीराम को जगत-नियंता न मानने वालों को गोस्वामी जी का इस तरह उत्तेजित होकर गाली देना उनके अपने ही सिद्धांत की दुर्बलता के लक्षण हैं। फिर यह सब गालियां उन्होंने शिव के मुख से दिलवाकर शिव को दूषित करने का भी दोष किया है। गोस्वामी जी को कबीर साहेब-जैसे चिंतकों तथा भविष्य के स्वतन्त्र-चिन्तकों से भी बहुत भय था, इसीलिए उन्होंने आतंकित होकर ये सारे अलीक तथा अशुद्ध वचन कहे हैं।

श्रीरामचन्द्र संसार के हर्ता-कर्ता हैं और साधकों द्वारा उपासनीय हैं, यह धारणा मुट्ठीभर लोग ही मान सकते हैं, किन्तु सबके हृदय में रमने वाला चेतन ही राम है, वही सबका अपना उपासनीय है, इस बात का विरोध संसार में कोई नहीं कर सकता। गोस्वामी जी का अवधनृपति-सुत, नृपतनय तथा दशरथसुत एक संप्रदाय विशेष का उपास्य हो सकता है, परन्तु कबीर साहेब का हृदय-निवासी राम सबका उपासनीय रहेगा। कबीर साहेब का राम मतवाद के जोश का फल नहीं है, किन्तु सबका अपना अनुभूत सत्य है। अतएव "दशरथसुत तिहुँ लोकहि जाना, राम नाम का मर्म है आना।" यह केवल कबीर का ही अकाट्य वचन नहीं है, किन्तु विश्वसत्ता की शाश्वत स्वीकृति है। कबीर मतवाद की बात नहीं करते हैं, किन्तु विश्वसत्ता के शाश्वत नियम की बात करते हैं। राम नाम के दशरथ-पुत्र हुए यह ठीक है। आज भी बहुत व्यक्ति राम नाम से जाने जाते हैं, परन्तु हर व्यक्ति का उपासनीय राम उसकी अपनी अंतरात्मा एवं शुद्ध चेतनस्वरूप है।

"जेहि जिव जानि परा जस लेखा, रजु का कहै उरग सम पेखा।" सद्गुरु इस पंक्ति में नाना संस्कारों के मनुष्यों की मानसिक योग्यता पर विचार करते हुए बड़ी उदारता से कहते हैं कि जिस व्यक्ति की जैसी बुद्धि होती है, जो अपने मन में जैसी कल्पना करता है, उसका वैसा उपास्य बन जाता है। किसी के कल्पित भूत-प्रेत ही उपास्य हैं, किसी के देवी-देवता, किसी के चांद-सितारे-सूरज आदि हैं, किसी के उपास्य कल्पित देहधारी परमात्मा। दृष्टिदोष होने पर रस्सी सांप दिखती है, इसी प्रकार बुद्धि भ्रमित होने पर देह ही को राम मानकर उसकी उपासना होने लगती है। किसी व्यक्ति के हाथ, पैर, मुंह, आंख, नाक, कान, ओष्ठ, छाती, पेट, नाभि, कमर आदि में कमलों तथा कामदेव आदि की उपमा देकर उनमें ध्यान, रति आदि करने की राय बहुत स्थूल बुद्धि की बात तथा साधना-पथ में केवल क, ख, ग है। परन्तु क्या किया जाये, जिसकी जैसी बुद्धि।

"यद्यपि फल उत्तम गुण जाना, हरि छोड़ि मन मुक्ति उनमाना।" यद्यपि श्रीराम में श्रद्धा रखने से फल उत्तम हैं; क्योंकि उनमें सर्वविदित अनेक सद्गुण हैं, तथापि लोग श्रद्धातिरेक में पड़कर श्रीराम को परमात्मा मान लेते हैं और सोचते हैं कि उनकी भक्ति करने से वे हमें मुक्ति दे देंगे, अपने धाम में बुला लेंगे। इस प्रकार लोग अपने आत्मारूपी हरि की स्थिति से वंचित हो जाते हैं। सद्गुरु ने इस पंक्ति में मुख्य दो बातें कही हैं। पहली बात है कि महाराज श्रीराम में अनेक अच्छे गुण हैं, इसलिए उनमें श्रद्धा रखने के फल अच्छे हैं, दूसरी बात है कि श्रद्धातिरेक में पड़कर उन्हें पूजने की वस्तु न बनाओ, किन्तु अपनी आत्मारूपी हरि को समझो।

हम पहली बात को लें। सदैव सद्गुण आदरणीय हैं। हम अपनी पूर्व परम्परा को आदर देते हैं, परन्तु जो उनमें शुभ होते हैं उन्हीं को। हर परंपरा के पूर्वजों में बुरे लोग भी होते हैं। उनको लोग आदर नहीं देते। सत्ता उन्हीं को आदर देती है जो शुभ है। श्रीराम केवल हमारे पूर्वज हैं इसी से हम उनका आदर नहीं करते हैं, किन्तु इसलिए हमें उनमें श्रद्धा रखनी चाहिए, क्योंकि उनमें अनेक ऐसे सद्गुण हैं जो हमारे लिए प्रेरणाप्रद हैं। उन्हें शाम को राजगद्दी देने की बात सुनाकर सुबह वनवास सुनाया गया, परन्तु वे इससे व्यथित न होकर सहर्ष वन जाने के लिए उसी क्षण तैयार हो गये, और जनता के लाख मनाने पर भी वन चले गये। भरत के बहुत प्रयत्न करने पर भी उन्होंने अयोध्या लौटने का विचार नहीं किया और कहा कि पिता की आज्ञा में चौदह वर्ष के लिए मेरा वनवास है, अतः उसे मैं पूरा करके ही लौटूंगा। उन्हें वन में नाना कष्ट मिले, परन्तु वे अपने प्रण पर अडिग रहे। उन्होंने भाई भरत के लिए राज्य छोड़ दिया। अतएव माता-पिता की आज्ञाकारिता, भ्रातृस्नेह, राजलिप्सा का त्याग, गुरुजनों, ऋषियों एवं संतों के प्रति विनम्रता, प्रजा के प्रति शील का

व्यवहार ये सब ऐसे सद्गुण हैं जो मानव मात्र के लिए उपयोगी हैं।[1] इसलिए सद्गुरु कबीर कहते हैं कि श्रीराम में श्रद्धा रखने के फल उत्तम हैं, क्योंकि उनमें अनेक श्रेष्ठ गुण हैं। हमें यह गर्व होना चाहिए कि श्रीराम जैसे महान पुरुष हमारे पूर्वज हैं।

गलत वहीं होने लगता है जहां श्रद्धा का अतिक्रमण एवं श्रद्धातिरेक होने लगता है। हम यह मानने लगते हैं कि श्रीराम तो अनंत ब्रह्मांडनायक हैं, उत्पत्ति, पालन, संहारकर्ता हैं। उनके एक-एक रोम में अनंत ब्रह्मांड लटके हैं। वे विश्वनियंता प्रभु हैं, वे तो सर्वसमर्थ ईश्वर हैं, तब उन्होंने बड़े-बड़े काम किये। हम वैसे कहां कर सकते हैं! हम तो उनको पूजकर, उनका नाम संकीर्तन कर मुक्त होंगे।

श्रीराम ने जीवन में कुछ त्याग किया तब वे महान हुए, यह न सोचकर उलटा सोचा जाता है कि वे ईश्वर थे तब बड़े काम कर सके। जब हम किसी को ईश्वर बनाकर उन्हें पूजा की वस्तु मान लेते हैं तब मानो उन्हें दफना देते हैं। सद्गुरु कहते हैं "हरि छोड़ि मन मुक्ति उनमाना" हम अपने शुद्ध चेतनस्वरूप-हरि को छोड़कर श्रीराम आदि की आराधना करके मुक्ति की कल्पना करने लगते हैं। श्रीराम हों या श्रीकृष्ण, वे एक देहधारी थे। उनकी देह बीत गये हजारों वर्ष हो गये। उनकी देह तो आज मिलने वाली नहीं हैं। उनकी आत्मा भी अपने कर्मों के अनुसार गति पायी होंगी। अतः उनसे भी मुलाकात नहीं हो सकती। आज श्रीराम, श्रीकृष्ण या किसी महापुरुष के केवल प्रेरक गुणों से हम प्रेरणा ले सकते हैं। प्रथम साधना में मन रोकने के लिए हम ध्यान का कुछ स्थूल आलंबन लेते हैं, उनमें हम राम, कृष्णादि के काल्पनिक चित्र को भी अवलम्ब बना सकते हैं। परन्तु वे गृहस्थ पुरुष थे। आलम्बन का अच्छा साधन वैराग्यवान पुरुष हैं। इसीलिए योगदर्शन ने बताया है "वीतरागविषयं वा चित्तम्"[2] अर्थात वीतराग पुरुष का चित्त से ध्यान रखने से मन एकाग्र होता है। परन्तु यह सब अन्तिम साधना नहीं है, क्योंकि बाहर का कोई भी आलम्बन हो वह जड़-विजाति तथा छूटने वाला है। अंततः तो मन के सारे संकल्पों को छोड़कर अपनी आत्मा में ही रमना होगा। हम अपनी चेतना एवं आत्मारूपी हरि को छोड़कर बाहर मुक्ति का अनुमान करने लगते हैं, यही हमारी भूल है। व्यक्ति की स्थिति उसके अपने चेतनस्वरूप में ही होगी, यही मोक्ष है। बाहर किसी में प्रेम लगाना या बाह्य वस्तुओं को ध्यान का विषय बनाना मोक्ष नहीं है।

"हरि अधार जस मीनहि नीरा, और जतन कछु कहैं कबीरा।" कबीर साहेब कहते हैं कि मैं तो मोक्ष के लिए श्रीराम-श्रीकृष्णादि किसी देहधारी की कल्पना में तन्मय होना नहीं बताता। मैं इन सबसे हटकर कुछ दूसरा ही उपाय बताता हूं, वह है "हरि अधार जस मीनहि नीरा" जैसे मछली निरन्तर पानी में रहती है, पानी में रमने से ही उसका जीवन है, वैसे निजात्म में रमना ही मोक्ष है। अपनी चेतना को छोड़कर बाहर कहीं भी रमना मोक्ष नहीं है, किन्तु बाहर से लौटकर निज चेतनस्वरूप में एवं आत्मा में रमना ही मोक्ष है। यह ठीक है कि साधक पहले बाहर से बिलकुल नहीं लौट सकता, वह तुरन्त ही अपनी आत्मा में नहीं लीन हो सकता। पहले वह जहां भी अच्छा समझता हो उसे आलम्बन बनाकर उसमें एकाग्र होना चाहिए; परन्तु अंततः उसे सारे दृश्यों को छोड़ना पड़ेगा चाहे वह अशुभ हो या शुभ। सारे दृश्यों को त्यागकर स्वरूपस्थिति मिलती है। अतएव उपासनीय तत्त्व अवधपति श्रीरामादि व्यक्ति विशेष नहीं, किन्तु स्वात्म शुद्ध चेतन है। ❑

---

1. शूर्पणखा-विरूपण तथा छिपकर वालीवध श्रीराम के व्यक्तित्व के धप्पे हैं। शूर्पणखा-विरूपण शायद वाल्मीकीय रामायण के पहले संस्करण में नहीं था। सीता वनवास तथा शंबूक हत्या वाल्मीकीय के उत्तर कांड का विषय है जो शुद्ध प्रक्षेप अंश हैं। शंबूकहत्या किसी घृणित मन वाले लेखक की कल्पना है। उसने श्रीराम के जीवन से उसे जोड़कर उनके तथा मानवता के साथ घोर अपराध किया है। इस संदर्भ को समझने के लिए 'रामायण-रहस्य' में आठवें अध्याय का 38वां संदर्भ 'शंबूक' तथा "कबीर पर शुक्ल की और मेरी दृष्टि" में 'शंबूक' पर हुई चर्चा को अवश्य देखें। शंबूकहत्या घृणित ब्राह्मणवादी व्यवस्था की कल्पना है और रामायण में पीछे का प्रक्षेप है।

2. योगदर्शन, 1/37।

इच्छाओं पर नियंत्रण

सद्गुरु कबीर ने बीजक में एक जगह कहा है—

बढ़वत बढ़ी घटावत छोटी, परखत खरी परखावत खोटी।

(बीजक, रमैनी–79)

बढ़ाते जाने से बढ़ती जाती है और घटाने जाने से घटती जाती है। यह है क्या? यह है आदत, तृष्णा। किसी भी आदत का सेवन करते रहो तो उससे कभी तृप्ति नहीं होती किन्तु उसकी तृष्णा और बढ़ती जाती है और आदत मजबूत होती चली जाती है। और एक दिन ऐसा आता है कि आदमी उस आदत की गिरफ्त में आ जाता है। चाहे वह किसी भी चीज की आदत हो, जिस आदत को आदमी ने सुख मानकर ग्रहण किया था कि इससे सुख मिलेगा वही आदत उसके लिए दुख और परेशानी का कारण बन जाती है। फिर उसके बिना आदमी रह नहीं पाता।

आज तक किसी को भी देखने, सुनने, खाने, पीने या अन्य वस्तुओं से तृप्ति नहीं मिली है। कबीर साहेब ने कहा है—

खाते–खाते युग गया, बहुरि न किया विचार॥

खाते–खाते, तमाम विषयों को ग्रहण करते–करते युगों बीत गये लेकिन आदमी तृप्त कहां हुआ? इच्छा पूरी कहां हुई? आदमी सोचता है कि अमुक चीज को खाने–पीने या ग्रहण करने की इच्छा मन में उठी है, यदि इस इच्छा के अनुसार हम काम कर लेते हैं तो इच्छा तृप्त हो जायेगी, शांत हो जायेगी फिर कोई परेशानी नहीं होगी। लेकिन होता उलटा है। जितना ही उस इच्छा को आदमी पूरा करना चाहता है इतनी ही इच्छा और बलवती होती चली जाती है। इच्छा आज तक किसी की पूरी हुई नहीं है। इच्छाओं की पूर्ति नहीं होती किंतु इच्छाओं की निवृत्ति होती है। पूर्ति तो आवश्यकताओं की होती है। आवश्यकता सबकी पूरी हुई है और आज भी पूरी हो रही है। आदमी फिजूलखर्ची न हो और मेहनती हो तो उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति होती ही रहेगी। किन्तु इच्छाओं की पूर्ति, कितना भी धन बढ़ जाये, आदमी को चाहे कुछ भी क्यों न मिल जाये, इच्छाओं की पूर्ति नहीं हो सकती। किसी कवि ने कहा है—

हजारों ख्वाहिशें ऐसी कि हर ख्वाहिश पे दम निकले।
बहुत निकले मेरे अरमान फिर भी बहुत कम निकले॥

हजारों ऐसी इच्छाएं थीं कि एक–एक इच्छा जान देकर पूरी करने लायक थी लेकिन दुर्भाग्य यह कि जितनी इच्छाओं को मैंने पूरा किया उससे कई गुना ज्यादा इच्छाएं अधूरी ही रह गयीं।

यह हर आदमी की बात है। इच्छाओं को तो विवेक–विचार से, संयम से निवृत्त करना पड़ता है। इच्छाओं के पीछे आदमी भागता फिरे तो कभी चैन से बैठ नहीं पायेगा, जीवन जीना मुश्किल हो जायेगा। कुछ घंटों में ही जितनी इच्छाएं मन में उठ जाती हैं उतनी इच्छा जीवन में पूरा करना कभी संभव नहीं होता। और रोज–रोज उठने वाली इच्छाओं को भला कौन पूरा कर पायेगा।

पूर्ति आवश्यकताओं की होती है, इच्छाओं की नहीं होती। एक संत ने लिखा है दुनिया में आज जितनी आबादी है इससे दस गुना भी आबादी बढ़ जाये तो धरती में ऐसी ताकत है कि वह सबकी आवश्यकताओं को पूरा कर देगी लेकिन धरती में यह ताकत नहीं है कि वह किसी एक आदमी की इच्छाओं को पूरा कर सके। उन्होंने यह भी लिखा है कि जिनके बिना जीवन न चल सके ऐसी वस्तुओं को यदि कागज में लिखने के लिए कह दिया जाये तो आदमी मुश्किल से आधा पेज भी नहीं लिख पायेगा। लेकिन जिनके बिना जीवन आराम से चल सकता है उन वस्तुओं का नाम लिखने के लिए कहो तो पूरी पोथी ही भर जायेगी। बहुत सारी चीजें ऐसी होती हैं जिनके बिना हमारा जीवन आराम से चलता है। हमारा ही नहीं हजारों–लाखों का जीवन चल रहा है। किन्तु उनको पाने के लिए हमारा मन परेशान रहता है।

इच्छाओं के पीछे भागते रहने से जो वस्तुएं प्राप्त हैं उनका भी सुख आदमी ले नहीं पाता, क्योंकि मन दूसरी

तरफ दौड़ता रहता है। तो जो प्राप्त चीजें हैं उनका भी उपभोग आदमी कहां कर पाता है। और उनमें मन आदमी को संतुष्ट रहने देता ही नहीं है। जो मिला है उसमें भी आदमी सोचता है कि यह बहुत बढ़िया क्वालिटी का नहीं है। अमुक के पास है उसकी क्वालिटी ज्यादा बढ़िया है। उसमें भी मीन-मेख निकालता है क्योंकि आदमी का स्वभाव बन गया है जो मिला है उसमें संतुष्ट न होकर उसमें दोष देखते रहना, कमी का अनुभव करते रहना। और जो नहीं मिला है उसकी इच्छाओं और याद में डूबे रहना।

इच्छाएं ऐसी हैं, आदतें ऐसी हैं कि इसे बढ़ाते जाओ तो बढ़ती ही चली जाती हैं। कितना भी दे दो, इन इच्छाओं को पूरा करके शांत करने को सोचना उसी प्रकार है जैसे आग में घी डालकर आग को बुझाने के लिए सोचना। आग में जितना घी डालो आग उतनी तेजी से बढ़ेगी। आग यदि जल रही है और उसमें कोई ईंधन न डालो तो कुछ देर में जलकर शांत हो जायेगी। इच्छाएं ऐसी ही हैं। जितना उनको पूरा करने के पीछे दौड़ो उतनी उनकी तृष्णा और बढ़ती है। यदि उनको घटाते जाओ तो रोज-रोज वह घटती चली जाती हैं। कोई भी ऐसी आदत नहीं है जिसे आदमी छोड़ न सके। संकल्प मजबूत हो और दृढ़ निश्चय आदमी कर ले तो पुरानी से पुरानी आदत को आदमी छोड़ सकता है। बहुतों ने छोड़ा भी है। बहुत से लोग ऐसे हैं जिन्होंने अपनी ऐसी बुरी आदतों को छोड़ दिया जिनके बिना उन्हें एक दिन भी रहना मुश्किल होता था लेकिन जब समझ हुई कि यह स्वास्थ्य के लिए बिल्कुल ही गलत है, तब दृढ़ निश्चय कर लिया और फिर छोड़ दिया।

डॉक्टर ने कह दिया कि देखो यदि जीवित रहना चाहते हो तो इस चीज को छोड़ना ही पड़ेगा तो आदमी मजबूर होकर उसे छोड़ देता है, इसमें भी उसे निश्चय तो करना ही पड़ता है। यह जरूर है कि जिस किसी चीज को आदमी बहुत दिनों से ग्रहण करता आ रहा है उसको छोड़ने में कुछ दिनों तक तो परेशानी होती है क्योंकि शरीर उसका अभ्यासी हो गया है। अब जब वह चीज नहीं मिलती है तो शरीर में अनेक प्रकार के उत्पात होते हैं। लेकिन आदमी यदि निश्चय कर ले तो सब कुछ ठीक हो जायेगा।

दृढ़ निश्चय यदि मन में हो तो कोई भी आदमी बड़ी-से-बड़ी आदत को छोड़ सकता है। भर्तृहरि के लिए उदाहरण आता ही है। वे उज्जैन के राजा थे। अपनी रानी पिंगला में अत्यंत आसक्त थे। उसकी आसक्तिवश वे रनिवास में ही पड़े रहते थे। राजकाज प्रायः मंत्रियों को देखना पड़ता था। इतना उसमें आसक्त थे, उसके मोह में डूबे हुए थे।

लेकिन जब उन्हें पता चला कि पिंगला मुझे छोड़कर घोड़ा दरोगा में अनुरक्त है, उससे उसका संबंध है। उनकी दृष्टि एकदम पलट गयी और उसी क्षण उन्होंने पिंगला को छोड़ दिया और राज्य को छोड़कर विरक्त हो गये। वे चाहते तो पिंगला और घोड़ा दरोगा को मरवा देते या फिर कठोर दण्ड दे देते लेकिन उन्हें सबसे घृणा हो गयी और पिंगला का त्याग कर दिया, राज-काज का त्याग कर दिया और महावैराग्यवान संत हुए। उनके द्वारा लिखित वैराग्य शतक पढ़ें तो अत्यंत तीव्र वैराग्य की बात भरी है।

अतः बड़ी-से-बड़ी आदत क्यों न हो, आदमी निश्चय कर ले तो उसे छोड़ सकता है। और जो अपनी बुरी आदतों को छोड़ देता है, उसका जीवन सुख-शांति से एकदम भरपूर हो जाता है।

शांति-सुख से जीवन जीना चाहते हैं तो इच्छाओं के पीछे दौड़ो मत, इच्छाओं को पूरा करने का प्रयास मत करो। जो सही इच्छा होगी वह तो अपने आप पूरी हो जायेगी, लेकिन मन में उठने वाली सारी इच्छाओं को पूरा करने के चक्कर में पड़ोगे तो वह बढ़ती ही जायेगी। एक इच्छा पूरी होगी तो सैकड़ों इच्छाएं सामने खड़ी हो जायेंगी। यदि कोई गलत आदत जीवन में पड़ गयी है तो हार मानकर बैठ न जाओ, किन्तु दृढ़ संकल्प कर लो तो गलत से गलत आदत भी छूट जायेगी।

सद्गुरु श्री प्रेम साहेब ने एक जगह उदाहरण दिया है कि एक राजा था उसे अफीम खाने की आदत थी।

उसकी आदत धीरे-धीरे बढ़ गई। काफी मात्रा में अफीम खाने लगा। जो रोज अफीम खायेगा उसका शरीर कैसा रहेगा इसे सहज समझा जा सकता है। धीरे-धीरे वह अत्यंत दुर्बल हो गया, इससे राज्य व्यवस्था बिगड़ने लग गयी। उसकी रानी उसको समझाती थी लेकिन वह मानता ही नहीं था। जब अत्यंत अशक्त हो गया तो रानी फिर कही। राजा ने कहा—ठीक है अफीम को छोड़ तो दूंगा लेकिन एकाएक छोड़ना बड़ा मुश्किल पड़ेगा। ऐसा कोई उपाय हो जिससे मैं इसे धीरे से छोड़ सकूं। रानी ने कहा—मैं उपाय सोचती हूं। रानी उपाय सोच कर राजा एक बार में जितना बड़ा अफीम खाता था उतना ही बड़ा एक खड़िया मिट्टी का चाक बनाया और उसी के तौल के बराबर राजा को अफीम दिया। दूसरे दिन उस खड़िया मिट्टी से दीवार में एक लकीर खींच दिया। खड़िया मिट्टी का वजन कुछ कम हो गया। फिर उसी वजन का अफीम तौलकर राजा को दिया। ऐसे करते-करते राजा ने महीना-डेढ़ महीना में अफीम खाना छोड़ दिया। या उसका अफीम खाना छूट गया। यदि आदत को घटाते जायें तो वह घटती ही चली जाती है।

वैसे तो कहा यह जाता है कि आदमी को अपनी इच्छाओं का दमन नहीं करना चाहिए। जो मन में आये उसे पूरा कर लेना चाहिए। क्योंकि इच्छाओं को दमन करने से मन में ग्रंथि बनती है और वे ग्रंथियां अनेक रोगों का कारण बनती हैं। इच्छाओं का दमन करके इच्छाओं को रोक-रोक करके आदमी अधिक बीमार है। इसलिए आदमी पागल भी होता है।

जानवरों को देखो वे अपनी इच्छाओं को रोकते नहीं हैं इसलिए उनके अंदर कोई ग्रंथि नहीं है। वे मनुष्यों की अपेक्षा अधिक स्वस्थ होते हैं। आदमी भी यदि वैसे हो जाये जो मन में विचार उठे उसे पूरा कर ले तो उसके मन में कोई ग्रंथि नहीं बनेगी और मानसिक तौर पर वह बीमार नहीं होगा, अधिक स्वस्थ और सुखी जीवन जीयेगा।

उपरोक्त बात सुनने में तो अच्छी लगती है और लगता है कि बात युक्तियुक्त है लेकिन ऐसा है नहीं। जानवरों में प्राकृतिक संयम होता है। पहली बात जानवरों में कोई दुर्व्यसन नहीं है। उनका एक प्राकृतिक खान-पान है, रहन-सहन है। अपने स्वाभाविक गुणों के अनुसार वे सब बरतते हैं। उनके पास कोई बड़ी इच्छा नहीं होती है। लेकिन आदमी के पास प्राकृतिक संयम नहीं है। आदमी में मन का विकास होने से वह जिस दिशा में जाना चाहे जा सकता है। आदमी में संयम यदि है तो वह विवेक का है। इच्छाओं पर विवेकपूर्वक संयम नहीं किया तो वह इतनी गहरी खाई में भी जा सकता है कि जिसकी कोई सीमा नहीं है।

यदि इच्छाओं पर संयम किया तो वह इतनी ऊंचाइयों पर पहुंच सकता है कि उससे ऊंचा और कोई हो नहीं सकता। पशु जिस स्तर पर है वह उसी स्तर पर रहेंगे। न उनका विकास होना है और न उनका पतन होना है। हजारों साल से जिस स्तर पर पशु जी रहे हैं वे वैसे ही जी रहे हैं। उनका खान-पान, व्यवहार, उनके प्रजनन करने की जो प्रक्रिया है सब एक जैसे हैं। उसमें कोई बदलाव आया ही नहीं है क्योंकि उनमें मन का विकास नहीं है। उनमें कोई इच्छा भी नहीं है। किन्तु आदमी में मन का विकास होने से कितना बदलाव आ गया है।

मन में जो इच्छा उठे उसको न रोककर पूरा कर ले, यह कहने में अच्छा लगता है लेकिन ऐसा संभव ही नहीं है। कोई ऐसा आदमी इस दुनिया में नहीं है जिसे अपनी इच्छाओं को रोकना न पड़ता हो। मन में जो इच्छा उठे उन्हें रोकना नहीं चाहिए अपितु उन्हें पूरा कर लेना चाहिए ऐसा जो कहने वाले हैं उन्हें भी अपनी इच्छाओं को रोकना पड़ता है। उनके मन में जो-जो बातें उठती हैं वैसी क्रिया वे कहां कर पाते हैं। सामाजिक नियम है, पारिवारिक नियम है और अन्य नियम हैं, उनके भय से हो या अन्य कोई कारण से हो, आदमी को अपने मन को रोकना ही पड़ता है।

सड़क पर निकलते हैं तो मन कहां-कहां दौड़ता है? किसकी-किसकी चाहना करता है? यदि मन जिसकी-जिसकी चाहना करता है उस-उस को ग्रहण करने लग जायें, वैसा-वैसा काम करने लग जायें तो

क्या होगा? क्या आदमी जी पायेगा। वह तो बाहर निकल ही नहीं पायेगा।

अतः हर आदमी को अपनी इच्छाओं का दमन करना पड़ता है। यह जरूर है कि जो आदमी बराबर मजबूर होकर अपनी इच्छाओं का दमन करता रहता है वह मानसिक रूप से रोगी हो जाता है। क्योंकि अंदर तो इच्छाएं बहुत उठ रही हैं, उन पर कोई कन्ट्रोल नहीं है और बाहर के नियम, कानून-कायदा और पारिवारिक मर्यादा या और प्रकार से प्रतिबंध, इससे इन्द्रियों से वैसी क्रिया कर नहीं पाता। बाहर से मजबूर और भीतर से इच्छाएं बलवान, तो ऐसा आदमी मनोरोगी होगा ही होगा। वह तन से भी रोगी होगा और मन से भी रोगी होगा।

लेकिन विवेक पूर्वक जो संयम करता है, अपने मन में गलत इच्छाएं उठाता ही नहीं है, बाहरी चीजों को देखकर ललचाता ही नहीं है, वह रोगी क्यों होगा। आज सर्वत्र जो आपाधापी मची हुई है उसका कारण यह है कि आदमी वस्तुओं को देख-देखकर ललचा रहा है। यह चाहिए वह चाहिए। वह देखता है कि अमुक चीज मेरे पड़ोसी के पास है तो मेरे पास क्यों नहीं होना चाहिए। वह देखादेखी इस चक्कर में पड़ जाता है। देखादेखी करने से इच्छाएं बढ़ती भी हैं। इसीलिए वह ज्यादा परेशान है।

खास बात है आवश्यकता को लेकर आदमी परेशान नहीं है। आवश्यकता को लेकर परिवार में झगड़ा नहीं है। झगड़ा है इच्छाओं को लेकर। जो काल्पनिक स्वार्थ है उसको लेकर झगड़ा ज्यादा है और जहां संयम है वहां थोड़ी ही वस्तुओं में लोग आराम से जीवन जी रहे हैं।

सद्गुरु कबीर साहेब कहते हैं "बढ़वत बढ़ी घटावत छोटी।" इच्छाओं को बढ़ाते जाओ, उसकी पूर्ति में दौड़ते जाओ तो इच्छाएं बढ़ती जाती हैं, तृष्णा का रूप ले लेती हैं और आदमी को चैन से रहने नहीं देतीं। उन्हें घटाते जाओ तो घटकर एकदम शांत हो जाती हैं। और जितनी इच्छाएं कम होती जाती हैं उतना ही आदमी सुखी होता है। बहुत अधिक इच्छा तो बहुत अधिक संताप। कम इच्छा तो कम संताप। बिल्कुल इच्छा नहीं तो कोई भी संताप नहीं।

इसलिए कहा गया है कि कामना और अशांति ये दोनों बहनें हैं। कामना अशांति को छोड़कर रह ही नहीं सकती है। और अशांति भी कामना के बिना नहीं रह सकती। जहां जितनी अधिक कामना होगी वहां उतनी अधिक अशांति होगी, पीड़ा होगी किन्तु जिसके मन में कामना नहीं, उसके अंदर कोई संताप नहीं, कोई अशांति नहीं। वह शांत ही है।

"परखत खरी परखावत खोटी" साहेब दूसरी बात कहते हैं कि अपनी कितनी बातें ऐसी होती हैं जो अपनी समझ से तो लगती हैं कि ये बिल्कुल सही हैं, इनसे बढ़कर सही कोई दूसरी बात हो नहीं सकती, लेकिन जब ज्ञानियों से, सन्तों से या बड़े-बुजुर्गों से उस बात की परख करवाते हैं तब वे बातें खोटी हो जाती हैं।

इसीलिए किसी काम को करने के पहले उसके जो विशेषज्ञ हैं, बड़े-बुजुर्ग हैं या अन्य लोग हैं, उनसे राय ले लेना अच्छा रहता है। और जो इस प्रकार से राय लेकर काम करते रहते हैं उन्हें कोई झंझट नहीं आती। बहुत-से लोग ऐसे होते हैं जो बिना किसी से राय लिए कई नया काम शुरू कर देते हैं। और बाद में परेशानियां आती हैं तो पश्चाताप करते हैं कि पहले राय ले लिया होता तो काम न बिगड़ता।

यह बात व्यवहार के क्षेत्र में भी है और अध्यात्म के क्षेत्र में भी है। अध्यात्म क्षेत्र में देखते हैं कि कितने ऐसे लोग हैं जो बिना जाने-समझे हठपूर्वक साधना करने लग गये। पहले यह नहीं सोचे कि ऐसा जो हम करने जा रहे हैं उसका परिणाम क्या होगा? इसलिए साहेब कहते हैं कि अपने अंदर यदि कोई विचार उठे तो उसको एकाएक सही न मान लो, उसकी परख करो। अपने पास उतनी परख नहीं है तो उसे दूसरों से परखा लो।

हम जो सोच रहे हैं और हमारी वह बात सही है तो अन्य लोगों से परखाने पर उसकी पुष्टि हो जायेगी। संतोष भी मन में रहेगा कि अन्य लोगों से मैंने राय लिया है तो निश्चित रूप से उसमें अच्छाई है, कोई

गलती नहीं है। यदि परखाये नहीं, राय नहीं लिए, एकाएक कोई काम करना शुरू कर दिए तो अनेक लोग कहने वाले भी मिलेंगे कि अरे! हम तो पहले से ऐसा कहते थे लेकिन उन्होंने हमारी बात नहीं मानी, हमें पूछा नहीं तो हम क्या करें। और अपने मन में भी होता है बाद में कि राय ले लिए होते तो अच्छा होता।

सद्गुरु कबीर साहेब ने एक जगह कहा है—"खरा खोट जिन नहिं परखाया, चाहत लाभ तिन मूल गमाया" विवेकियों के पास, गुरुजनों के पास, जो विशेषज्ञ लोग हैं उनके पास जाकर जिन लोगों ने सही और झूठ की, सत्यासत्य की परख नहीं करवायी, मन में जो भावना उठी बस वैसा करने लग गये ऐसे लोग लाभ तो बहुत चाहते हैं लेकिन परिणाम में अपनी मूल पूंजी खो बैठते हैं। इसलिए हर दिशा में नित्य परखते रहने की और परखाते रहने की जरूरत है। जो ऐसे परखते-परखाते रहते हैं वे कहीं भूलते नहीं हैं। गलती होने का चांस, भटकने का चांस बहुत कम रहता है।

अतः हर दिशा में अपने से जो योग्य लोग हैं, समझदार ज्ञानी लोग, विशेषज्ञ हैं उनसे राय लेकर काम करते रहो। व्यवहार परिवार, समाज, धर्म, अध्यात्म कोई भी क्षेत्र हो—सब जगह राय लेकर काम करोगे तो काम बिगड़ने का चांस कम रहेगा। परखाते रहने से नयी-नयी युक्तियां जानने को मिलती हैं। नये-नये ज्ञान के क्षेत्र खुलते चले जाते हैं। इससे ज्ञान बढ़ता रहता है और आने वाली जो कठिनाइयां हैं वे दूर होती रहती हैं।

अतः बराबर परखते और परखाते रहने से हर दिशा में आदमी उन्नति ही करता चला जाता है। उसे कभी हार मानना नहीं पड़ता, कभी पीछे लौटना नहीं पड़ता। इसलिए लोगों से राय लेते रहें चाहे व्यवहार का क्षेत्र हो या अपने मन में आने वाली उलझनें हों, उसके लिए भी राय लेने की जरूरत होती है।

कई बार ऐसा होता है कि मन में कोई बात उठती है और उसका हम समाधान नहीं कर पाते हैं। साधना मार्ग में ऐसा बहुत होता है। साधक आया, साधना क्षेत्र में चलता है लेकिन देखता है कि साधना क्षेत्र में लगा हूं, सेवा कर रहा हूं, स्वाध्याय कर रहा हूं, ध्यान-चिंतन करता हूं लेकिन मन रुकता नहीं है, मन में जो कल्पनाएं हैं, वासनाएं हैं वे शांत होती नहीं हैं, कैसे क्या करूं। अब यदि वह पुराने सन्तों से, ज्ञानियों से अपने मन की बात न कहे और अपने मन के भीतर ही रखा रहे तो वह साधना कर ही नहीं पायेगा।

यदि अपने मन की बात को खोल करके गुरु से या बड़े संतों से कह दे तो मन हलका हो जायेगा और फिर उधर से रास्ता मिलेगा। इसलिए हर क्षेत्र में जो योग्य लोग हैं, ज्ञानी हैं, विद्वान हैं, उनसे राय लेकर काम करने से नयी-नयी युक्तियां मिलती हैं और हम आगे बढ़ सकते हैं। केवल अपने मन के अनुसार करते रहने से पछताने का अवसर ज्यादा आ सकता है। साहेब यहां कहते हैं कि तुम इच्छाओं के जाल में पड़ गये हो परन्तु घबराओ मत, कमर कसकर संकल्प कर लो तो बड़ी-से-बड़ी गलती को सुधार कर अपने कल्याण का काम कर सकते हो। दूसरी बात, अपने मन में उठी हुई बातों को सच मत मान लो किन्तु अन्य लोगों से परखाओ। तुम्हारी बातें सच हैं तो उनका समर्थन हो जायेगा। तुम्हारा साहस बढ़ेगा। और यदि गलत हैं तो तुम खोटा काम करने से बच जाओगे। हर तरफ लाभ ही लाभ है। इन बातों पर हम अमल करेंगे तो प्रत्येक दिशा में हमारी उन्नति हो सकती है।

—धर्मेन्द्र दास

जग सुख सब जेहि को, तबहूँ न इच्छा पूर।
जेहि उतपति तेहि से भई, ताहि मिले कस दूर॥
इच्छा जहेर सरूप है, चाखत मातै जीव।
मृतक होय निज बोध से, न्यारा रहै सो शीव॥
इच्छा युद्धि निशिदिन करौ, और से बोलौ नाहिं।
नाशि करौ यहि शत्रु को, और शत्रु कोइ नाहिं॥
याहि विजय से विजय सब, याहि हारि से हार।
स्वतः स्वतन्त्र स्वरूप तुम, देखौ हृदय बिचार॥
करौ काज यह एक तुम, और काज सब डारि।
बाकी रहा न करन अब, देखौ हृदय बिचारि॥

—सद्गुरु श्री विशाल साहेब

सबेरे की रोशनी

लेखक—श्री खलील जिब्रान

(1)

उत्तर लेबनान के एक गांव में शेख अब्बास नाम का एक बड़ा जमींदार रहता था। वह अपने को गांव का मालिक ही समझता था। जब वह किसानों से बातें करता तब वे दीनता के साथ सिर झुका लेते और जब वह गुस्से में आता तो वे डर के मारे कांप उठते। उसकी शक्ल देखते ही भाग जाते। अगर वह किसी के गाल पर तमाचा मार देता तो वह आदमी चुप खड़ा रहता और सोचता कि यह मार आसमान से आ पड़ी है। अगर वह किसी को देखकर तनिक मुस्कराता तो सब लोग उस आदमी को बधाई देते।

ये गरीब लोग शेख अब्बास के सामने सिर झुकाते थे—इसलिए नहीं कि वे कमज़ोर थे और शेख ताकतवर था, बल्कि इसलिए कि वे कंगाल थे और उन्हें शेख की जरूरत थी, क्योंकि जिस भूमि में खेतीबाड़ी करते थे और जिन मकानों में रहते थे, वे सब शेख की जायदाद थी। जी-तोड़ मेहनत करने पर भी उन्हें इतना भी अनाज नहीं मिल पाता था, जो उन्हें भूख के गढ़ों से निकाल सके। अधिकतर किसान तो जाड़ा बीतने से पहले ही रोटी तक को मुहताज हो जाते थे और एक-एक करके शेख के पास जाकर रोना-धोना शुरू कर देते थे, ताकि उससे एक दिनार या गेहूं की एक टोकरी कर्ज मिल सके। शेख उनकी मांग को खुशी से मंजूर कर लेता, क्योंकि वह जानता था कि फसल के समय एक दिनार और गेहूं की एक टोकरी की दो टोकरियां बन जायेंगी। इस तरह वे शेख अब्बास के कर्ज के नीचे दबे हुए थे।

जाड़े का मौसम आया। बर्फ गिरने लगी। देहात के लोग शेख अब्बास के गोदामों को अनाज से और मटकों को अंगूर के रस से भरकर घरों में बैठ गये।

रात हो गई थी। तूफानी हवा बर्फ से लदे बड़े-बड़े पहाड़ों से बर्फ को उड़ा-उड़ाकर नीचे फेंकने लगी।

इस भयानक रात में बाईस बरस का एक नवयुवक कजहिया[1] के गिरजाघर से एक कठिन रास्ता पार कर शेख अब्बास के गांव को जा रहा था। कजहिया का गिरजा लेबनान का सबसे अधिक प्रसिद्ध और धनवान गिरजा है।

सर्दी नवयुवक के जोड़ों को ऐंठ रही थी। भूख और डर ने उसकी ताकत को खत्म कर दिया था। उसकी काली पोशाक बर्फ से ढकी हुई थी, मानो उसने कफन पहन रखा हो। वह आगे की ओर बढ़ता तो हवा ऐसे जोर से धक्का लगाती, मानो वह उसे जीवन के बंधन में देखना नहीं चाहती थी। वह बेचारा गिर पड़ता और फिर उठ जाता।

नवयुवक चलता गया और मौत भी उसके पीछे-पीछे हो ली। अंत में उसकी सारी ताकत चुक गई। उसकी सुध-बुध कम होती गई। उसकी नसों का लहू जम गया और वह बर्फ पर गिर पड़ा।

उसके शरीर में जीवन का केवल एक ही निशान बाकी था और वह था उसका रह-रहकर चिल्लाना।

इस गांव के उत्तर की ओर खेतों के बीच एक छोटे-से मकान में राहील नाम की एक स्त्री अपनी कोई अठारह साल की बेटी मरियम के साथ रहती थी। यह स्त्री समआन नामक एक आदमी की बेवा थी, जो पांच साल हुए जंगल में मरा पाया गया था और जिसके हत्यारे का पता आजतक नहीं लगा था।

अपनी ही मेहनत से वह रोजी कमाती थी। उसकी बेटी मरियम खूबसूरत थी और घर के काम-काज में अपनी मां का हाथ बंटाती थी।

उस भयावनी रात में राहील और मरियम अंगीठी के पास बैठी थीं। आधी रात बीत चुकी थी। अब वे

---

1. कजहिया सरियानी (सीरियन) शब्द है, जिसका अर्थ है 'जीवन का स्वर्ग'।

सोने जा रही थीं कि इतने में मरियम को खिड़की में से कोई आवाज सुनाई दी। उसने मां से पूछा, "अम्मा, क्या तुमने सुना? मुझे लगता है, बाहर कोई कराह रहा है।"

राहील उठकर खिड़की के पास गई और बोली, "हां, मुझे भी आवाज़ सुनाई दे रही है। आओ, दरवाजा खोलकर बाहर जायें और उसकी तलाश करें!" इतना कहकर राहील बाहर निकल गई। मरियम दरवाजे में ही खड़ी रही।

राहील थोड़ी दूर गई होगी कि इतने में उसने अपने सामने एक आदमी को बर्फ पर बेहोश पड़ा पाया। उसने आगे बढ़कर उसके कपड़ों से बर्फ को झाड़ा और उसका सिर अपनी गोद में रखकर वह उसकी नाड़ी और दिल की धड़कन देखने लगी। फिर उसने जोर से आवाज दी।

मरियम घर से निकली और डर तथा जाड़े से कांपती हुई उस स्थान पर पहुंच गई। दोनों ने नौजवान को उठा लिया और उसे लेकर मकान पर पहुंच गई। उन्होंने उस युवक को अंगीठी के पास लिटा दिया। मां उसके हाथ-पांव मलने लगी और बेटी अपने कपड़े से उसके भीगे हुए बालों को पोंछने लगी। कुछ मिनट में उस युवक के शरीर में हरकत हुई और उसकी आंखों में जान आ गई। मरियम ने उसके गीले जूते और भीगा लबादा उतारते हुए कहा, "देखो मां, इसकी पोशाक जोगियों की-सी है।"

राहील ने अंगीठी में सूखी लकड़ी डालते हुए कहा, "अजीब बात है! ऐसी भयावनी रात में तो जोगी या पादरी मठ से नहीं निकला करते। इस दुखी आदमी को किस बात ने मजबूर किया होगा कि वह अपनी जान खतरे में डाले?"

लड़की बोली, "लेकिन इसके दाढ़ी तो नहीं है। जोगियों के तो घनी दाढ़ी होती है!"

मां बोली, "बेटी, इसके पांव मलो!"

इसके बाद मरियम पासवाली कोठरी में से एक प्याले में थोड़ी-सी शराब लाई और उस युवक को पिलाई। तब उस युवक ने उसकी तरफ देखकर कहा, "भगवान, तुम्हारा भला करे!"

फिर राहील दो रोटियां एक रकाबी में रखकर लाई और युवक के पास बैठकर उसके मुंह में इस तरह कौर देने लगी जैसे मां अपने बेटे को खिलाती है। जब वह काफी खा चुका तो बोला, "आदमी के हाथों ने मुझे इस हालत में डाला, और आदमी के ही हाथों ने मुझे बरबादी से बचा लिया।"

राहील ने ममताभरी आवाज में पूछा, "ऐ भाई, तुम पर ऐसी क्या गुजरी कि जिससे तुम्हें इस भयावनी रात में जोगियों के मठ को छोड़ना पड़ा?"

नौजवान ने आह भरकर कहा, "मैं मठ से जबरदस्ती निकाल दिया गया।"

राहील ने डरी आवाज में पूछा, "निकाल दिया गया?"

"हां, मुझे मठ से निकाल दिया गया, क्योंकि मुझे दुःखियों और गरीबों का माल खाने से नफरत हो गई थी।"

तब राहील ने प्यार से पूछा, "ऐ भाई, तुम्हारे मां-बाप कहां हैं?"

युवक ने दर्दभरी आवाज में उत्तर दिया, "मेरे न बाप है, न मां-बहन, और न कोई ऐसी जगह, जहां मैं अपना सिर छिपा सकूं!"

नौजवान ने अपना सिर उठाया और कहना शुरू किया, "सात साल की उम्र में ही मेरे मां-बाप गुजर गये। गांव का पादरी मुझे कजहिया के मठ में ले गया। वहां मुझे गायों का चरवाहा बनाया गया। जब मैं पन्द्रह बरस का हुआ तब उन्होंने मुझे यह मोटी और काली पोशाक पहना दी और कहा, 'भगवान की कसम खाकर अहद करो कि तुम अपने आपको गरीबी, हुक्म मानने और संयम के लिए निछावर कर दोगे।' उनके कहने का मतलब ध्यान में आने से पहले ही मैंने उनके शब्दों को दुहराया। मेरा नाम खलील था और जब मैं जोगी बना तब उन्होंने मेरा नाम बिरादर मुबारक रख दिया; मगर

उन्होंने मुझे अपना भाई न बनाया। वे बड़े अच्छे-अच्छे खाना खाते थे, मगर मुझे सूखी रोटियां और बासी सब्जी खिलाते थे। मुझे यह बुरा लगता था और मैं उस पर सोचता रहता था।

"आखिर एक दिन हिम्मत करके मैं मठ के जोगियों के पास गया और बोला, 'हम गरीबों और दुखियों के दान से फायदा क्यों उठाते हैं? हम बेकार बैठकर क्यों ऐश उड़ाते हैं? आओ, इस मठ की यह बड़ी खेती उन गरीब देहातियों में बांट दें और उनका जो माल हम उनसे ले चुके हैं, उनकी जेबों में डाल दें। हम उन कमजोर लोगों की सेवा करें, जिन्होंने हमें ताकतवर बनाया है और उन गांवों की तरक्की करें, जिनके दान ने हमें धनवान बना दिया है।'

"जब मेरी बात खत्म हुई तो जोगियों में से एक आगे बढ़ा और दांत पीसकर बोला, 'ऐ मरियल आदमी, तेरी इतनी जुर्रत!' फिर दूसरा बोला, 'शैतान, तू अभी इसका नतीजा भुगतेगा!'

"इसके बाद उन्होंने बड़े पादरी से शिकायत की। उसने मुझे बुलाकर एक माह तक जेलखाने में रखने का हुक्म दिया। एक महीना मैं उस कब्र में पड़ा रहा, जहां मुझे रोशनी भी दिखायी नहीं दी। महीना बीत गया। मैं जेलखाने से बाहर निकला, मगर वहां की तकलीफें मेरी हिम्मत को पस्त नहीं कर सकीं। आज शाम को मैंने उन लोगों को इंजील से ये फिकरे पढ़ सुनाये—उसने एक समूह से, जो उसका यक़ीन पाने के लिए निकला था, कहा—'ऐ सांप की औलादो, आनेवाली आफत से डरो और संयम का मीठा फल पैदा करो! तुम अपने दिलों में कहते हो कि हम हजरत इब्राहीम की औलाद हैं; लेकिन मैं तुमसे कहता हूं कि भगवान इस पत्थर से भी इब्राहीम की संतान पैदा कर सकता है। और अब कूल्हाड़ा पेड़ की जड़ काट चुका है और जो पेड़ अच्छे फल नहीं देता उसे आग में जला दिया जाता है।' लोगों ने पूछा, 'अब हम क्या करें?' उसने उत्तर दिया, 'जिसके पास कपड़े हैं, वह उन्हें उस आदमी को दे दे, जिसके पास नहीं हैं, और जिसके पास खाना है, वह उसे दे दे, जो भूखा है।'

"मेरे होठों से इन शब्दों का निकलना था कि एक ने मेरे मुंह पर बड़े जोर से तमाचा मारा; दूसरे ने मुझे पांव से ठोकरें मारीं, तीसरे ने मेरे हाथ से इंजील छीन ली और चौथे ने बड़े पादरी को पुकारा। बड़ा पादरी जल्दी से आया और जब उसने सारी बातें सुनीं तो उसकी आंखें लाल हो गयीं। वह गुस्से से कांपने लगा और गरजती हुई आवाज में बोला, 'इस बदमाश जोगी को पकड़ लो और मठ से निकाल दो, ताकि बाहर की आफतें इसे अच्छा सबक सिखा दें!'

"जोगियों ने मुझे तुरन्त पकड़ लिया और मुझे मठ के बाहर धकेल दिया।

"इस तरह जोगियों और पादरियों ने मुझे मौत के मुंह में दे दिया, मगर बर्फ और आंधी के पीछे एक ताकत ने मेरी पुकार को सुना और आपको मेरे पास भेजा, ताकि आप मुझे मरने से बचा लें!"

खलील की कहानी सुनकर राहील बोली, "भगवान जिसे सच्चाई के रास्ते में मदद देता है, उसे न जुल्म खत्म कर सकते हैं और न आंधी और बर्फ मार सकते हैं।"

मरियम ने आह भरकर कहा, "आंधी और बर्फ फूलों को बरबाद कर सकते हैं; लेकिन बीज नहीं मर सकते!"

इस हमदर्दी से खलील का पीला चेहरा चमक उठा। कुछ ही मिनट में उसकी आंखें मूंद गयीं और वह इस तरह सो गया, जैसे बच्चा मां का दूध पीकर सो जाता है। राहील और मरियम भी अपने-अपने बिस्तरों पर जाकर सो गयीं।

2

दो हफ्ते बीत गये। खलील ने तीन बार कोशिश की कि समुद्र के किनारे की राह ले, मगर राहील ने प्यार से उसे रोककर कहा, "देखो भाई, तुम अब कहीं मत जाओ, यहीं रहो; क्योंकि जो रोटियां दो आदमियों का पेट भरती हैं, वे तीन के लिए काफी होती हैं। भैया, हम

गरीब जरूर हैं, मगर भगवान की दुआ से उसी तरह जीते हैं, जैसे दूसरे आदमी।''

मरियम भी अपनी खामोश आहों से अपना प्यार जाहिर करती थी।

एक दिन हिम्मत करके उसने खलील से कहा, ''तुम इसी गांव में क्यों नहीं रहते? क्या यहां की जिन्दगी दूर-दूर के उजाड़ परदेश से अच्छी नहीं है?''

उसके शब्दों की कोमलता और स्वर के संगीत से व्याकुल होकर खलील बोला, ''इस गांव के लोग पसंद न करेंगे कि पादरियों के मठ से निकाला गया आदमी उनका पड़ोसी बने। अगर मैं इस गांव में रह गया और मैंने यहां के लोगों से कहा, 'आओ भाइयो, अपनी मर्जी के मुताबिक प्रार्थना करें, न कि इस तरह जिस तरह जोगी और पादरी चाहते हैं, क्योंकि भगवान की यह मर्जी नहीं हो सकती कि वह ऐसे मूर्खों का देवता बने, जो ईश्वर को छोड़ औरों के पीछे चलते हैं' तो ये लोग मुझे काफिर ठहरायेंगे और कहेंगे कि यह आदमी उस हुकूमत से बैर रखता है, जो भगवान ने पादरियों को दी है।...फिर भी मरियम! इस गांव में एक ऐसा जादू है, जिसने मुझे जीत लिया है। मैं इस गांव में एक बड़ा अच्छा फूल देखता हूं, जो कांटों में पड़ा है। क्या मैं इस फूल को छोड़कर जा सकता हूं? नहीं, कभी नहीं!''

मगर खलील की किस्मत ने उसे ज्यादा दिन तक चैन से नहीं रहने दिया।

उस गांव के मालिक शेख अब्बास की पादरियों से गहरी दोस्ती थी। एक दिन उस गांव का पादरी इलियास शेख़ अब्बास के पास गया और बोला, ''पादरियों ने एक बदमाश बागी को मठ से निकाल दिया था। वह काफिर अब दो हफ्तों से इस गांव में आया हुआ है और समआन की बेवा राहील के घर में रहता है। हमारा फर्ज है कि हम भी उसे अपने गांव से निकाल बाहर करें!''

अब्बास ने पूछा, ''क्या हमारे लिए यह मुनासिब न होगा कि हम उसे यहीं रहने दें और अपने अंगूर के बागों का रखवाला या ढोरों का चरवाहा बना लें?''

पादरी बोला, ''अगर यह आदमी काम करनेवाला होता तो वे पादरी उसे क्यों निकाल देते, जिनकी खेती बहुत बड़ी है और जिनके पास बेशुमार ढोर है?'' और फिर उसने वह सारा किस्सा उसे सुनाया जो उसने मठ के पादरियों से सुना था। सुनकर शेख अब्बास गुस्से से लाल-पीला हो गया। उसने जोर से चिल्लाकर अपने नौकरों को आवाज दी और कहा, 'बेवा राहील के घर में एक आदमी है, जिसने पादरियों का लिबास पहन रखा है। जाओ, उसकी मुश्कें कसकर यहां ले आओ। और अगर वह औरत किसी तरह रुकावट डाले तो उसे भी गिरफ्तार कर लो और उसके सिर के बालों को पकड़कर उसे बर्फ में खींचते हुए ले आओ, क्योंकि बदमाश का मददगार भी बदमाश ही होता है।''

नौकर हुक्म बजा लाने के लिए तेजी से बाहर निकले।

3

राहील, मरियम और खलील एक चौकी के पास बैठे खाना खा रहे थे कि इतने में दरवाजा खुला और शेख अब्बास के नौकर अन्दर आये। राहील डर गयी और मरियम ने एक चीख मारी, मगर खलील खामोश था, क्योंकि उसने उनके आने का सबब जान लिया था। एक नौकर आगे बढ़ा और खलील के कंधे पर हाथ रखकर बोला, ''पादरियों के मठ से निकाले हुए नौजवान तुम्हीं हो?''

खलील ने जवाब दिया, ''जी हां, मैं ही हूं! क्यों, क्या चाहते हो?''

नौकर ने कहा, ''हम चाहते हैं कि तुम्हारी मुश्कें कसकर तुम्हें शेख अब्बास के मकान पर ले चलें और अगर तुम कुछ आनाकानी करो तो तुम्हें मरे हुए बकरे की तरह घसीटते हुए ले जायें।''

राहील का चेहरा पीला पड़ गया। उसने कांपती हुई आवाज में पूछा, ''इसका क्या कसूर है, जिसकी वजह से शेख अब्बास ने इसे बुलाया है?''

नौकर मारे गुस्से के चिल्ला उठा, "क्या इस गांव में कोई ऐसी औरत भी हो सकती है, जो शेख अब्बास की इच्छा के खिलाफ जाये?"

यह कहकर उसने खलील की मुश्कें कसने को एक मोटी रस्सी निकाली। खलील उठकर खड़ा हो गया। उसके होठों पर मुस्कराहट थी। उसने उन नौकरों से कहा, "दोस्तो, मुझे तुम्हारी हालत पर तरस आता है। तुम एक जबरदस्त आदमी के हाथ में अंधे औजार की तरह हो। वह तुम पर जुल्म करता है और तुम्हारे हाथों से कमजोरों को बरबाद कराता है। तुम्हारी लाचारी पर मुझे दुख है। आओ, मेरी मुश्कें कस लो और जो जी में आये करो!"

नौकरों ने ये बातें सुनीं तो उनकी आंखें पथरा गयीं। मगर फौरन उन्हें याद आ गया कि वे किस काम के लिए वहां आये हैं। आगे बढ़कर उन्होंने खलील की मुश्कें कस लीं और उसे पकड़े हुए चुपचाप बाहर निकले। राहील और मरियम भी उनके पीछे-पीछे चल दीं—उसी तरह जिस तरह यरूशलम की लड़कियां हजरत ईसामसीह के पीछे हो ली थीं, जबकि उन्हें क्रूस पर लटकाने के लिए ले जाया जा रहा था।

4

देहात में छोटी-बड़ी खबरें बहुत जल्दी फैल जाती हैं। शेख अब्बास के आदमियों ने ज्यों ही खलील को गिरफ्तार किया, यह खबर गांव के लोगों में छूत की बीमारी की तरह फैल गयी। वे अपने-अपने मकान छोड़कर बिखरे हुए सिपाहियों की तरह हर तरफ से तेजी के साथ भागे और जैसे ही नवयुवक को शेख के मकान में लाया गया, वह बड़ा घर स्त्रियों, पुरुषों और बच्चों से भर गया। सब-के-सब उस काफिर की ओर आश्चर्य से देख रहे थे, जिसे पादरियों ने मठ से निकाल दिया था।

शेख अब्बास एक ऊंची गद्दी पर विराजमान था और उसके पास पादरी इलियास बैठा था। सामने किसान व नौकर-चाकर खड़े थे और बीच में खलील, जिसकी मुश्कें कसी हुई थीं, इस तरह अकड़कर खड़ा था, जैसे गढ़ों के बीच में ऊंचा टीला।

शेख अब्बास ने खलील की ओर देखकर पूछा, "ऐ शख्स, तेरा नाम क्या है?"

खलील ने उत्तर दिया, "मुझे खलील कहते हैं।"

शेख ने पूछा, "तुम्हारा खानदान कौन-सी है? और तुम कहां के रहने वाले हो?"

खलील ने उन किसानों की ओर देखा, जो उसकी तरफ नफरत से देख रहे थे और कहा, "ये दुखी-गरीब लोग ही मेरा खानदान हैं और ये ही फैले हुए गांव मेरी मातृभूमि है।"

शेख अब्बास मुस्कराया और बोला, "तुम जिन लोगों के साथ अपना रिश्ता जोड़ते हो, वे तुम्हें सजा दिलाना चाहते हैं और जिन गांवों को तुम अपनी मातृभूमि बताते हो, वे नहीं चाहते कि तुम यहां चैन से रहो!"

खलील ने व्याकुल होकर उत्तर दिया, "नासमझ जातियां अपने शीलवान बेटों को पकड़कर जुल्म करनेवालों की बेरहमी के हवाले कर देती हैं और बेइज्जती तथा दुर्दशा के गढ़ों में फंसे हुए गांव अपने प्यारे बेटों पर जुल्म करते हैं। ये दीन-दुखी लोग, जिन्होंने आज मुझे रस्सों से जकड़कर तुम्हारे हवाले किया है, कल अपनी गर्दनें तुम्हारे हवाले कर चुके हैं।"

शेख ने जोर से ठहाका मारकर कहा, "क्या तुम पादरियों के मठ में चरवाहे नहीं थे? तो फिर तुमने अपने ढोरों को क्यों छोड़ दिया? और तुम वहां से क्यों निकाले गये?"

खलील ने उत्तर दिया, "मैं चरवाहा था, कसाई नहीं। मैं ढोरों को हरी-भरी चरागाहों में ले जाता था, सूखे पहाड़ों पर नहीं। अगर हम इन गरीब आदमियों के साथ ऐसा ही सलूक करते तो तुम आज इन शानदार महलों के मालिक न होते और ये बेचारे अपने अंधेरे झोपड़ों में भूखों न मरते।"

शेख के माथे पर ठंडे पसीने की बूंदें चमकने लगीं। लेकिन जल्दी ही वह सम्हल गया और उसने

हाथ फैलाकर कहा, "तुम्हारी मुश्कें कसवाकर तुम्हें यहां इसलिए नहीं मंगाया गया है कि तुम्हारी वाहियात बातें सुनें; बल्कि इसलिए कि एक बदमाश अपराधी की तरह तुम्हारी जांच की जाये। तुम पर जो जुर्म लगाये गये हैं, उनके बारे में तुम अपनी सफाई पेश करो या हमारे सामने झुककर दया की प्रार्थना करो। हम तुम्हें माफ कर देंगे और उसी तरह गायों का चरवाहा बना देंगे, जिस तरह तुम पादरियों के मठ में थे।"

खलील ने लापरवाही से जवाब दिया, "अपराधी का इंसाफ अपराधी नहीं किया करते और "बदमाश काफिर" अपनी सफाई दोषियों के सामने पेश नहीं किया करते!"

ये शब्द कहकर खलील ने उस बड़े मकान में जमा हुए लोगों पर नजर दौड़ाई और कहा, "ऐ लोगो, तुम अपनी अंगीठियों की गर्मी छोड़कर यह देखने आये हो कि किस तरह तुम्हारा बेटा और तुम्हारा भाई जकड़ा हुआ लाया गया है। तुम एक मुजरिम काफिर को अदालत के सामने खड़ा देखने आये हो। वह अपराधी मैं ही हूं। वह काफिर मैं ही हूं। तुम मेरी दलील सुनो और मेरे साथ रहम न करो, बल्कि इंसाफ करो, क्योंकि दया कमजोर और अपराधी लोगों के लिए होती है। बेकसूर आदमी तो इंसाफ चाहता है। मैं तुम्हारे इंसाफ के फैसले को स्वीकार करता हूं, क्योंकि जनता की इच्छा भगवान की इच्छा होती है। अपने दिलों को खोलो और मेरी बातों को सुनो, फिर तुम्हारा विवेक जैसा कहे वैसा न्याय करो।"

"ऐ मर्दो, मेरा जुर्म यह है कि मैं तुम्हारी बरबादी की जानकारी और तुम्हारी गुलामी को महसूस करता हूं, और ऐ नारियो! मेरा गुनाह यह है कि मेरे दिल में तुम्हारे लिए और तुम्हारे बच्चों के लिए हमदर्दी भरी हुई है। मित्रो, मैं तुममें से ही एक हूं। मैंने मठ में यह देखा कि तुम लोग अपने खेतों में बकरियों के उस रेवड़ की तरह हो, जिसके पीछे भेड़िया जा रहा है। मैं रास्ते के बीच में खड़ा होकर चीखने-चिल्लाने लगा। इस पर भेड़िये ने मुझ पर हमला करके मुझे दूर भगा दिया, ताकि मेरे शोर-गुल से बकरियां भेड़िये को रात के अंधेरे में अकेला छोड़कर इधर-उधर भाग न जायें।

"तुमने सुना है कि अल्लाताला ने हजरत आदम से कहा था कि मेहनत करके रोटी कमाओ। फिर शेख अब्बास वह रोटी क्यों खाता है, जिसमें तुम्हारे माथे का पसीना मिला हुआ है? तुम बहुत बड़े और आलीशान महल बनाते हो, लेकिन तुम्हारे रहने के लिए झोपड़ी के सिवा कुछ नहीं। क्या तुमने ईसामसीह का वह वचन नहीं सुना है, जो उन्होंने अपने शिष्यों से कहा था—'जो कुछ दो, मुफ्त दो और जो कुछ लो, मुफ्त लो। घरों में सोना, चांदी और तांबा जमा न करो?' फिर ये पादरी और जोगी किस शिक्षा के अनुसार अपनी प्रार्थनाओं को चांदी-सोने के बदले में बेचते हैं?"

खलील का चेहरा चमक उठा। उसने जान लिया कि सुननेवालों के हृदय में उनकी आत्मा जग रही है। उसकी आवाज पहले से ज्यादा ऊंची हो गयी। वह कहने लगा, "मेरे भाइयो, तुम अल्लाह के बेटे होकर यह कैसे कबूल करते हो कि आदमी की गुलामी मंजूर की जाये। ईसामसीह ने तुम्हें 'भाई' कहकर पुकारा था, फिर तुम अपने को शेख अब्बास के गुलाम क्यों कहलाते हो?...आज तुमने जो बातें मुझसे सुनीं, उन्हीं बातों के सबब से मैं मठ से निकाला गया। अब अगर तुम्हारे गांव का शेख और तुम्हारे गिरजा का पादरी मुझे सूली पर चढ़ा दे तो मुझे खुशी ही होगी।"

खलील की बातों ने लोगों के दिलों पर जादू का-सा असर किया। उनकी आंखों से पर्दे इस तरह हट गये जैसे एक अंधा आदमी अचानक देखने लग जाये। मगर शेख अब्बास और पादरी इलियास गुस्से के मारे कांप रहे थे। वे चाहते थे कि खलील को चुप करा दें; पर ऐसा कर नहीं सकते थे। आखिर शेख अब्बास खड़ा हो गया। उसने त्यौरी चढ़ाकर कठोर आवाज में लोगों से कहा, "तुम्हें हो क्या गया है? क्या तुम सुन नहीं रहे हो? क्या तुम्हारे शरीर सुन्न हो गये हैं कि तुम इस काफिर को पकड़ने लायक नहीं रहे।"

इतना कहकर शेख ने तलवार खींच ली और वह खलील की ओर झपटा ताकि उस पर वार करे, मगर इतने में वहां जमा हुए लोगों में से एक ताकतवर आदमी आगे बढ़ा और बोला, "ऐ सरदार! अपनी तलवार को म्यान में डालो, वरना तलवार का बदला तलवार से लिया जायेगा!"

शेख कांपने लगा। उसके हाथ से तलवार गिर गयी। उसने चिल्लाकर कहा, "क्या एक कमजोर नौकर ईश्वर के समान अपने मालिक को रोक सकता है?"

उस आदमी ने जवाब दिया, "ईमानदार नौकर बदमाशी और जुल्म में अपने मालिक का मददगार नहीं होता।"

अब राहील को भी बोलने की हिम्मत हो गयी। वह आगे बढ़ी और बोली, "इस आदमी ने अपनी बातों से हमारा ही दिल खोलकर रख दिया है। इसलिए अब जो आदमी बदमाशी करेगा वह सबका दुश्मन होगा।"

शेख ने दांत पीसते हुए कहा, "तू भी विद्रोह करती है, ऐ औरत! क्या तू भूल गयी कि आज से पांच बरस पहले जब तेरे शौहर ने मुझसे बगावत की थी तो उसका क्या नतीजा हुआ था?"

यह सुनकर राहील को बहुत गुस्सा आया और गुस्से के मारे वह कांपने लगी। उसने लोगों की तरफ देखकर फरियाद की, "सुन रहे हैं आप? यह हत्यारा गुस्से में आकर अपने गुनाह को कबूल कर रहा है। मेरे पति के हत्यारे का पता उस वक्त नहीं चल सका, क्योंकि वह तो दीवारों के पीछे छिपा हुआ था। भगवान ने अचानक हमें वह हत्यारा दिखा दिया है, जिसने मुझे बेवा बनाया!"

राहील की इस बात से उस कमरे में सन्नाटा-सा छा गया। इतने में पादरी इलियास उठा और उसने कांपती हुई आवाज में नौकरों को हुक्म दिया, "इस औरत को गिरफ्तार कर लो, जो तुम्हारे मालिक पर झूठा इलजाम लगा रही है और इसे काफिर खलील के साथ कैद-खाने में डाल दो। जो आदमी ऐसा करने से तुम्हें रोकेगा, वह भी इनके अपराध में शामिल समझा जायेगा और उनकी तरह उसे भी पाक गिरजा से निकाल दिया जायेगा।"

लेकिन नौकर चुप रहे। उनके जमादार ने कहा, "हमने शेख अब्बास की नौकरी रोटी के टुकड़े के लिए की थी, पर हम उसके गुलाम नहीं हैं?" इतना कहकर उसने अपनी वर्दी उतारकर शेख अब्बास के सामने फेंक दी। दूसरे नौकरों ने भी वैसा ही किया और कहा, "अब हम इस खूनी आदमी की नौकरी नहीं कर सकते!"

पादरी इलियास ने जब यह हालत देखी तो वह समझ गया कि झूठी ताकत का जादू टूट चुका है। इसलिए वह उस घड़ी को कोसता हुआ मकान से बाहर चला गया, जब खलील उस गांव में आया था।

इसी समय एक आदमी आगे बढ़ा और उसने खलील की मुश्कें खोल दीं और शेख अब्बास की ओर देखकर, जो कुर्सी पर पत्थर की तरह चुपचाप बैठा था, बोला, "इस नवयुवक ने हमारे अंधेरे दिलों को रोशन कर दिया है और इस बेवा ने हम पर ऐसा राज जाहिर कर दिया है, जो पांच साल से छिपा हुआ था। हम तुम्हें तुम्हारे हाल पर छोड़ते हैं। कुदरत खुद तुमसे बदला लेगी।"

अचानक स्त्रियों और पुरुषों की यह आवाज उस बड़े मकान में गूंज उठी—"आओ, हम इस मकान से भाग चलें, जिसकी दीवारों पर पाप और बुराइयां लिखी हुई हैं।"

एक ने कहा, "हमें वही करना चाहिए जो खलील हमें बताये, क्योंकि वह हमारी जरूरतों को जानता है और हमारे दिलों को समझता है।"

दूसरे ने कहा, "हम सुल्तान से प्रार्थना करें कि वह खलील को शेख अब्बास की जगह गांव का सरदार बना दे!"

जब हर तरफ से अलग-अलग आवाजें आने लगीं तो खलील ने अपना हाथ उठाकर लोगों को चुप कराया

और कहा, "भाइयो, जल्दी न करो! मैं प्रेम के नाम पर तुमसे यह चाहता हूं कि तुम सुल्तान के पास न जाओ, क्योंकि वह इंसाफ नहीं करेगा और न इस बात की उम्मीद रखो कि मैं इस गांव का सरदार बनूंगा, क्योंकि ईमानदार सेवक कभी नहीं चाहता कि वह एक क्षण के लिए भी बदमाश सरदार बने। अगर मुझसे प्रेम करते हो तो मुझे आज्ञा दो कि मैं तुम्हारे बीच रहकर तुम्हारे सुख-दुख का साझीदार बनूं और तुम्हें खेतों के सुधार और सुखों का रास्ता दिखाऊं।"

यह कहकर खलील उस मकान से निकला। सब लोग उसके पीछे-पीछे हो लिए। जब वे गिरजा के पास पहुंचे तो खलील एक पैगम्बर की तरह वहां ठहर गया और लोगों से बोला, "भाइयो, आज रात हम अब्बास के घर पर इसलिए इकट्ठे हुए थे कि सुबह की रोशनी को देखें। वह रोशनी हमें दिखायी दी है। अब जाओ और अपने-अपने बिस्तरों पर जाकर सो जाओ!" और खलील, राहील और मरियम के पीछे-पीछे उनके मकान चला गया। लोग अपने-अपने घर चले गये।

5

दो महीने बीत गये। खलील हर रोज गांववालों को उनके अधिकार और कर्त्तव्य समझाता रहता। गांववाले उसकी बातें सुनकर सुख अनुभव करते और खुशी-खुशी अपनी खेती-बाड़ी का काम करते। इधर शेख अब्बास कुछ पागल-सा हो गया। वह अपने मकान में इस तरह घूमता-फिरता था, जैसे पिंजरे के अन्दर चीता।

आखिर एक दिन वह मर गया।

किसानों में उसकी मृत्यु के कारणों के संबंध में मतभेद था। कुछ कहते थे कि उसका दिमाग फिर गया था। कुछ का ख्याल था कि उसने जिंदगी से मायूस और दुखी होकर जहर खा लिया, मगर जो स्त्रियां उसकी पत्नी को सांत्वना देने के लिए जाती थीं, वे वापस आकर बताती थीं कि शेख डर के मारे मर गया; क्योंकि राहील का मृत पति समआन आधी रात के समय खून में सने हुए कपड़ों में उसे दिखाई देता था।

खलील और मरियम के बीच जो मुहब्बत पैदा हो गयी थी, उसकी जानकारी जब गांववालों को हुई तो उन्हें बड़ी खुशी हुई और उन्होंने उनकी शादी बड़ी धूमधाम से कर दी। अब खलील सचमुच उन्हीं में से एक बन गया था।

जब फसल की कटाई के दिन आये तो किसानों ने खेतों में जाकर अनाज इकट्ठा किया। चूंकि अब शेख अब्बास नहीं था, इसलिए किसानों ने अपने कोठे गेहूं, ज्वार और जैतून से भर लिए।

उन दिनों से लेकर आजतक उस गांव का हर आदमी सुख के साथ खेती-बाड़ी करता है और आनंद से अपनी मेहनत से पैदा किये बाग के फलों को जमा करता है। जमीन का मालिक वही है, जो उसमें खेती करता है।

आज इन घटनाओं को हुए आधी सदी बीत चुकी है। जब कोई बटोही उस रास्ते से गुजरता है तो वह उस गांव के लोगों की खूबियां देखकर दंग रह जाता है। वह देखता है कि मामूली झोंपड़ी की जगह सुन्दर मकान बन गये हैं और उनके आसपास हरे-भरे खेत और लहलहाते बाग बहुत शोभा देते हैं।

अगर शेख अब्बास का इतिहास पूछें तो गांव का आदमी टूटे हुए एक पत्थर के पास ले जायेगा, जिसके आसपास की दीवारें गिर चुकी हैं, और कहेगा, "यह है शेख अब्बास का आलीशान महल और यही है उसका इतिहास!" और अगर पूछें कि खलील का इतिहास क्या है तो वह अपना हाथ आकाश की ओर उठाकर कहेगा, "हमारा प्यारा खलील वहां रहता है, मगर उसकी कहानी पुरखों ने हमारे दिलों के पन्नों पर लिख रखी है, जिसे समय नहीं मिटा सकता।"

(विद्रोही आत्माएं से साभार)

❑

सुखी जीवन की चाबी

लेखक—गुरुवेन्द्र दास

(गतांक से आगे)

3. संसार-शरीर तथा संबंधों की नश्वरता—तनाव, अवसाद, डिप्रेशन होने का मुख्य कारण संसार, शरीर तथा संबंध का अधिकाधिक तादात्म्य (लगाव) होना भी है। आदमी का जिन-जिन प्राणी-पदार्थों से गहरा लगाव हो जाता है तो उनका जरा भी नुकसान बर्दाश्त नहीं होता और जिन-जिन प्राणी-पदार्थों से ज्यादा लगाव नहीं है, उनका चाहे सर्वस्व बर्बाद हो जाये उसे कुछ भी फर्क नहीं पड़ता। अब जरा विचार करें, संसार क्या है? विद्वानों ने इसकी परिभाषा करते हुए कहा है "संसरति इति संसारः।" जो सदैव सरकता जाये, बदलता जाये, स्थिर न रहे, पानी की धारा की तरह बहता जाये इसी का नाम संसार है।

संसार दो तरह का होता है नेचुरल (प्राकृतिक) और कृत्रिम अर्थात अपना बनाया हुआ। प्राकृतिक संसार मतलब सूरज, चांद, सितारे, नक्षत्र, पृथ्वी, पानी, आग, हवा, वृक्ष, वनस्पतियां, नदियां, पर्वत आदि। आदमी को इनमें कहां लगाव या मोह होता है। हां, कभी आंधी, अवर्षण, अतिवर्षण, भूचाल, ओला आदि के कारण धन-जन की क्षति होती है तो कुछ तकलीफ होती है। आदमी इसे सहन कर लेता है। इसको लेकर किसको गाली दे, किस पर मुकदमा करे। ज्यादा तकलीफ तो अपनी बनायी दुनिया से ही होती है।

आदमी जिस-जिस को अपना मानता है जैसे कि माता-पिता, पति-पत्नी, भाई-भाई, मकान-दुकान, धन-दौलत, जमीन, मोटर-कार आदि उनके सम्बंधों में उतार-चढ़ाव आने से ज्यादा कष्ट होता है। जो आदमी इनमें से जिनको जितनी गहराई से अपना मानेगा, मोह करेगा, आसक्त होगा उसको उतनी पीड़ा होगी। गोस्वामी जी ने कहा है—जीवन में सारी व्याधियों का मूल मोह है और उसी के पीछे नाना शूल, कष्ट, पीड़ा उत्पन्न होती है।[1] राजा दशरथ को प्राणांतक पीड़ा न तो प्रजा से और न ही मंत्रियों से बल्कि कैकेयी और राम के प्रति अत्यधिक मोह के कारण हुई थी। रावण सहित पूरी लंका का विनाश रावण का सीता के रूप सौंदर्य के प्रति अधिक मोह के कारण ही तो हुआ था। सीता-हरण के पीछे राम-सीता का स्वर्गमृग के प्रति मोह ही कारण था।

कहां तक गिनाया जाये इसकी कहानी बड़ी लम्बी है। सबको पता है कि संसार में जो भी आया है उसे एक दिन जाना है चाहे वह चोर, डाकू या राजा-बादशाह हो, चाहे साधु-संन्यासी हो। लेकिन आदमी को इतना बड़ा व्यामोह है कि सबको जाते हुए देखकर भी अपने लिए सोचता है कि सब मर गये तो मर गये, हम थोड़े मर जायेंगे। महाभारत में युधिष्ठिर और यक्ष के संवाद में बड़ी रोचक बात बताई गयी है। युधिष्ठिर से यक्ष ने कई प्रश्न पूछे जिसमें से एक यह प्रश्न बड़ा मार्मिक है—"सबसे बड़ा आश्चर्य क्या है?" युधिष्ठिर ने कहा—"रोज-रोज प्राणी यमलोक को जा रहे हैं किन्तु जो बचे हुए हैं वे सदैव जीवित रहना चाहते हैं।"

अहन्यहनि भूतानि गच्छन्तीह यमालयम्।
शेषाः स्थावरमिच्छन्ति किमाश्चर्यमतः परम्॥

कबीर साहेब ने यहां तक कहा ब्रह्मा जी चले गये, काशीवासी शिव जी सहित विष्णु जी भी चले गये। ग्वाल-बाल सहित मथुरा वासी महाराज श्री कृष्ण जी चले गये।[2] लक्ष्मण जी चले गये, राम जी चले गये, किंतु छाया की तरह साथ रहने वाली पतिव्रता सीता जी उनके साथ न जा सकीं। कौरवों को विनशते देर न लगी। धारा नगरी को बसाने वाले राजा भोज जी चले गये, बुद्धि में कुशल सहदेव जी, माता कुन्ती एवं पाण्डव भी चले गये, सोने की नगरी लंका बसाने वाले प्रतापी

1. मोह सकल व्याधिन कर मूला। तेहिते पुनि उपजे बहु शूला।

2. बीजक, रमैनी 54।

राजा रावण भी चले गये पर साथ में कुछ ले जा न सके। अंतरिक्ष तक जिसके ऐश्वर्य की चर्चा थी ऐसे सत्यव्रतधारी राजा हरिश्चन्द्र भी नहीं रहे। किन्तु मूढ़ तथा अज्ञानी मनुष्य संग्रह पर संग्रह कर स्वयं तो मर रहा है और स्वजनों की चिंता कर रो रहा है।[1] कबीर साहेब ने तो यहां तक कह दिया दुनिया मुर्दों का गांव है। यहां राजा-प्रजा, जोगी, पीर-पैगंबर, रोगी-वैद्य, चांद-सूरज, धरती-आकाश आदि जितने भी पैदा हुए हैं सब मरेंगे।—'साधो यह मुरदों का गांव।' बात तो यहां यह है कि हम इनके मोह से कैसे बचें। जब तक संसार-शरीर तथा संबंध के प्रति सुखरूपता, रमणीयता एवं नित्यता का भ्रम रहेगा तब तक इसके मोहजाल से नहीं बचा जा सकता।

आदमी यदि अपनी मानी हुई हर अच्छी से अच्छी चीज का बारीकी से रासायनिक अध्ययन करे तो उसमें उसे वह वस्तु ही दिखाई नहीं देगी। उसमें तो उसे सिर्फ उड़ता हुआ कणों का प्रवाह दिखाई देगा। जिस शरीर को हम अपना मानकर रोज नहलाते, धुलाते, खिलाते-पिलाते, साज-शृंगार करते हैं उसका पोस्टमार्टम करके देखिये तो सारा आकर्षण ही खत्म हो जायेगा। शरीर से चाम की परत-दर-परत हटाते जायें तो अंदर मल-मूत्र, रक्त, पसीना एवं हड्डी का कंकाल दिखाई देगा फिर मोह कैसा।

देख कर मत भूलना यारों बाहर की सफाई पर।
वर्क सोने का मढ़ा है गोबर की मिठाई पर॥

बचपन और जवानी में शरीर में जो सुन्दरता और लावण्यता रहती है, बुढ़ापा आते-आते सारी सुन्दरता व लावण्यता कपूर की तरह उड़ जाती है।

जिस शरीर को देखकर लोग पहले पास आते थे, आलिंगन करते थे, उसी शरीर को देखकर बुढ़ापा में लोग पास आना व आलिंगन करने की बात कौन कहे दूर से नाक-भौं सिकोड़ने लगते हैं। जब सब कुछ अनुकूल रहता है, शरीर-स्वास्थ्य अच्छा रहता है तो लोग पास आने के लिए बहाना खोजते हैं किंतु जब परिस्थिति बदल जाती है, प्रतिकूल हो जाती है, शरीर रुग्ण व बूढ़ा हो जाता है तो लोग पास आने के लिए नहीं बल्कि दूर जाने के लिए बहाना ढूंढते हैं।

सुन्दरदास जी महाराज ने बड़ा अच्छा कहा है—

जाहि देह माहिं तू अनेक सुख मानि रह्यो।
ताहि में विचार देखु कौन बात भली है॥
मेद मज्जा मांस रग-रग में रकत भरो।
पेट हू पिटारी तामें ठौर ठौर मली है॥
हाड़न के मुख भयो हाड़न के नैन नाक।
हाथ पांव सोऊ सब हाड़न की नली है॥
सुन्दर कहत याहि देखि जनि भूलो कोई।
भीतर भंगार भरो ऊपर तो कली है॥

यहां कुछ भी स्थिर रहने वाला नहीं है। बचपन से लेकर बुढ़ापा तक क्षण-क्षण सब कुछ बदलने वाला है। आदमी जब युवा होता है तो जिस शादी को लेकर बड़ी गरमाहट होती है, खुशियां होती हैं कुछ ही दिन बाद सारी गरमाहट, खुशियां दुख में, क्लेश में बदल जाती हैं। किसी ने बड़ा सुन्दर कहा है—

हंसता हुआ मधुमास भी देखोगे तुम,
मरुस्थल की प्यास भी देखोगे तुम।
सीता के स्वयंवर पे न झूमो इतना,
कल राम का बनवास भी देखोगे तुम॥

जिन रिश्तों को लेकर आदमी बड़े गुमान से हम तुम्हारे हैं, तुम हमारे हो कहते हैं उसी में से किसी की जब मौत हो जाती है तो दूसरा उसके वियोग में पागल-सा हो जाता है। लेकिन जाने वाला न तो लौटकर आता है न ही पीछे मुड़ कर देखता है। किसी ने बड़ा ही अच्छा कहा है—"दिल में दिल बन कर जो धड़के, गया तो न देखा जरा मुड़के।" मरा हुआ व्यक्ति चाहे जितने प्रिय क्यों न हो वापस नहीं आ सकता। यह प्रकृति का विधान है, इसे दुनिया का कोई भी संविधान नहीं बदल सकता। वस्तुतः यह संविधान अच्छा है। यदि प्राणी जन्म ही ले, मरे न तो धरती पर पैर रखने की जगह तक नहीं रहेगी। एक बार अकबर ने बीरबल से

1. बीजक, रमैनी 55।

कहा—बीरबल! यह सल्तनत यदि सदा एक-सी रहती तो कितना अच्छा होता। बीरबल तो हाजिर जवाब थे ही, उसने तुरंत जबाव दिया—हुजूर बड़ा बुरा होता। अकबर ने कहा—क्यों? क्या तुम्हें मेरी सल्तनत से ईर्ष्या है। बीरबल ने बड़ी विनम्रतापूर्वक कहा—नहीं हुजूर, ऐसी बात नहीं है। बात ऐसी है यदि सल्तनत सदा एक-सी होती तो आज आप इस गद्दी पर न होते, आपके दादा-परदादा बैठे होते। शुक्र करिये खुदा की कि आज आप इस गद्दी पर बैठे हैं। इतिहास उठाकर देखिये कितने बड़े-बड़े चक्रवर्ती राजा-महाराजा हुए आज उनके अच्छे-बुरे नाम के अलावा कुछ भी नहीं है। जब वे थे तब उनकी तूती बोलती थी। किसी ने बड़ा अच्छा कहा है—

इंसान की खुशबू रहती है, इंसान बदलते रहते हैं।
दरबार लगा रह जाता है, सुल्तान बदलते रहते हैं॥

चैतन्य महाप्रभु के शिष्य रूपगोस्वामी ने कहा है—

यदुपतेः क्वा गता मथुरापुरी, रघुपतेः क्व गतोत्तर कोशला।
इति विचिन्त्य मनः कुरु सुस्थिरम् नसदिदं जगदित्येव धारव॥

अर्थात यदुपति श्रीकृष्ण के मथुरा का वैभव और रघुपति रामचन्द्र जी के उत्तरकोशल का ऐश्वर्य कहां गया। जगत की क्षणभंगुरता पर सुस्थिर होकर विचार कीजिए, फिर यह निश्चय कीजिए कि आपको किस मार्ग पर चलना है।

उत्तर रामचरितम् में लेखक ने लिखा है कि एक चित्रकार ने श्रीराम की चित्रावली बनायी। उसे श्रीराम, सीता तथा लक्ष्मण देखने लगे। जब जनकपुर से बरात लौटकर अयोध्या पहुंचती है तो चित्र के उस अंश को देखकर श्रीराम कहने लगे—"उन दिनों पिताजी जीवित थे, नववधुएं घर में आयी थीं और माताएं इस चिंता में थीं कि हमारे पुत्र कैसे सुखी होंगे। हमारे वे दिन चले गये।"[1] अर्जुन का अपने पुत्र अभिमन्यु के प्रति कितना मोह था। अर्जुन को जब पता चला कि अभिमन्यु मारा गया तो वह मूर्छित हो गया। पागल-सा चिल्लाने लगा हाय अभिमन्यु, हाय अभिमन्यु। श्री कृष्ण ने बहुत समझाया फिर भी अर्जुन की मूर्च्छा भंग नहीं हुई। कहानी कहती है कि श्री कृष्ण अर्जुन को सदेह स्वर्ग ले गये अभिमन्यु से मिलाने, जहां अभिमन्यु खेल रहा था। अभिमन्यु को देखकर अर्जुन बेटा अभिमन्यु, बेटा अभिमन्यु कहकर दौड़ा। तब अभिमन्यु ने कहा—कौन किसका पुत्र और कौन किसका पिता। न मैं आपका पुत्र हूं, न आप मेरे पिता हैं। वह तो सपने की तरह कुछ दिनों का संबंध था। समय पूरा हुआ संबंध खत्म, तब जाकर अर्जुन की मूर्च्छा भंग हुई। सपने में आदमी कभी राजा बनता है, रानी बनता है, सिपाही बनता है, सेठ बनता है, भिखारी बनता है, पुजारी बनता है, साधु बनता है, सेवक बनता है किंतु सपने टूटते ही सब खत्म। किसी ने बड़ा ही सच कहा है—

नींद खुली तो सपना गया,
आंख मुंदी तो अपना गया।
दो दिन का मेहमान है तू,
सांस रुकी तो दफना गया।

सच कहा जाये तो यहां कोई किसी का है ही नहीं सब गोरवा संघात है। गाय आदि जानवर सुबह एक जगह इकठ्ठे होते हैं और शाम होते-होते सब अपनी-अपनी जगह पर चले जाते हैं। इसी प्रकार संसार में माता, पिता, पुत्र, पत्नी, पति, भाई, बहन, नाना, दादा आदि के रूप में एक जगह मिलते हैं और समय आने पर सब छोड़-छोड़ कर चले जाते हैं। इसलिए "का मोहः का शोकः।" कबीर साहेब बड़े तत्त्वदर्शी महापुरुष थे इसीलिए उन्होंने पहले से कह दिया था—

झूठ झूठा कै डारहू, मिथ्या यह संसार।
तेहि कारण मैं कहत हौं, जाते होय उबार॥

संसार के सारे ऐश्वर्य स्वप्नवत हैं, नाशवान हैं इतना जानते हुए भी मूढ़ आदमी उसके पीछे पागल बना भटकता रहता है—सब ऐश्वर्य नास्ति के माहीं, ताके पीछे जीव बौराहीं।

---

1. जीवत्सु तातपादेषु नूतने दारसंग्रहे।
मातृभिश्चिन्त्यमानानां ते हि नो दिवसा गताः।
(उत्तररामचरितम्)

4. प्रारब्ध पर विश्वास—दुनिया की सभी संस्कृतियों में भारतीय संस्कृति प्रारब्ध पर याने कर्मफल पर जबर्दस्त विश्वास करती है। ब्राह्मण परम्परा में जिन्हें ईश्वर, अवतार, भगवान मानकर उनकी पूजा करके पाप-कर्म से छूटने की आशा की जाती है उन्हीं ईश्वरों को अपने कर्मफल भोगने की बात पंडितों ने शास्त्रों में लिख रखा है। आदमी के द्वारा जाने-अनजाने यदि पाप कर्म हो जाता है या कोई जघन्य अपराध हो जाता है तो एक बार लोक अदालत से वह बच सकता है, निष्पाप साबित भी हो सकता है किन्तु कर्म की अदालत में बचने की कोई संभावना ही नहीं है। कर्मफल में देर हो सकती है पर अंधेर नहीं। लोक कहावत है, जैसा कर्म करेगा वैसा फल देगा भगवान, ये है गीता का ज्ञान। किसी ने कहा है—कर्मों का तो मिलेगा फल, आज नहीं तो निश्चय कल। किसी ने यह भी कहा है यह जीव स्वयं कर्म करता है और कर्मानुसार स्वयं उसका फल-भोग भी पाता है तथा कर्मानुसार ही वह स्वयं संसार-सागर में विभिन्न योनियों में भटकता है तथा साधना एवं सत्कर्म द्वारा स्वयं वह उससे मुक्त भी हो सकता है—

स्वयं कर्म करोत्यात्मा स्वयं तत्फलमश्नुते।
स्वयं भ्रमति संसारे स्वयं तस्माद् विमुच्यते॥

गोस्वामी जी कहते हैं—

ना काहुइ कोई सुख दुख कर दाता,
निज कृत कर्म भोग सुन भ्राता।

कबीर साहेब ने तो बेबाक शब्दों में कहा—जीव का अपना किया हुआ कर्म बिना भोगे समाप्त नहीं हो सकता चाहे करोड़ों युग बीत जाये। हे रमैया राम! तूने जैसा कर्म किया आज वैसा फल तुम्हें मिल रहा है इसके लिए दूसरे को दोष देने से क्या फायदा। सद्गुरु कबीर के स्वर में किसी ने एक श्लोक में बड़ा अच्छा कहा है "अपने किये हुए शुभ या अशुभ कर्म अवश्य ही भोगने पड़ते हैं। बिना भोगे कर्म नहीं मिटते चाहे करोड़ों कल्प बीत जाये।" बात तो यहां यह है कि यदि जीवन में तनाव, कुढ़न, चिंता-शोक, अवसाद है तो वे सब हमारे ही कर्म के फल हैं जिसका फल-भोग हमें ही भोगना होगा। मन में प्रश्न हो सकता है कि वर्तमान में तो हमने कोई ऐसा कर्म नहीं किया, फिर ऐसा भयंकर रोग, समस्या, परेशानी हमारे जीवन में क्यों आ गयी? यह सच है कि आपने अभी वर्तमान में ऐसा कोई पाप या अपराध नहीं किया है। फिर भी तमाम संयम के बावजूद असाध्य रोग, समस्या या परेशानी वर्तमान जीवन में है तो यह जरूरी भी नहीं है कि वे सब वर्तमान जीवन के ही कर्म हों, पूर्व जीवन के भी हो सकते हैं। जैसे किसान अपने खेत में बड़ी सफाई एवं अच्छी तरह से देखभाल के बाद बीज बोता है तो उसके खेत में केवल वही बीज ही निकलते हों यह जरूरी नहीं है, दूसरे बीज भी जगह-जगह निकल आते हैं। ऐसा क्यों? क्योंकि किसान ने पहले उस खेत में वह बीज बोया रहा होगा या किसी और माध्यम से उस खेत में वह बीज आया होगा, तभी किसान के उस बीज के साथ योग्यता पाकर ऊग आया। कर्म शुभ हो या अशुभ, स्थूल हो चाहे सूक्ष्म फल देता ही है। सैकड़ों बछड़ों के बीच में गाय जैसे अपने बछड़े को पहचान लेती है वैसे कर्म कर्ता का पीछा करता है। कर्म के विषय में किसी पंडित ने बड़ा ही सुन्दर कहा है—जो होनी है वह अवश्य होकर रहती है। देखिये औघड़दानी कहे जाने वाले शिव जी स्वयं नंगे रहते हैं और जगतपालक कहे जाने वाले विष्णु जी सांप पर सोते हैं।

अवश्यं भाविनोभावा भवन्ति महतामपि।
नग्नत्वं नीलकंठस्य महा अहि शयनं हरे॥

प्रारब्ध कर्म मतलब वह कर्म जो कर्म हमने पूर्व में किया है और उसका फल-भोग हमें आज सुख-दुख के रूप में मिल रहा है भाग्य कहलाता है। जैसे किसी को हमने गाली दी बदले में उसने भी हमें गाली दी या मार दिया तो यह कर्म तुरंत रफा-दफा हो गया। लेकिन किसी की हमने हत्या कर दी तो जिसकी हमने हत्या की वह तो खत्म हो गया। यदि लोग जान गये तो दण्ड

अदालत देगी, नहीं तो जिसने हत्या की है उसका संस्कार उसके अंतःकरण में पड़ ही गया है। देर-सबेर तो उसे उस अपराध का दण्ड भोगना ही पड़ेगा। प्रारब्ध का भोग तो सबको भोगना पड़ता है। बस फर्क इतना है जिसका स्टेमना (इम्युनिटी पावर) अधिक है वह हंसकर झेल लेता है और जिसका कमजोर है वह थोड़े-थोड़े में परेशान हो जाता है। कबीर साहब ने कहा है—

देह धरे का दण्ड है, सब काहू को होय।
ज्ञानी भुगते ज्ञान से, अज्ञानी भुगते रोय।

प्रारब्ध भोग में पैसा, पद, प्रतिष्ठा नहीं चलता कि लोग सोचें हम तो बड़े पैसे वाले हैं, हमारी बड़ी पहुंच है या हम भगवान के बड़े भक्त हैं, मंदिर में जाकर भगवान की पूजा कर लेंगे, भोग चढ़ा देंगे और हमारा अपराध माफ हो जायेगा। प्रारब्ध आपका जो है उसमें थोड़ा भी कम-ज्यादा कोई नहीं कर सकता। एक लड़के को उसकी सौतेली मां बहुत तंग किया करती थी। रोज गाली-मार यहां तक कि ठीक से भोजन भी नहीं देती थी। वह लड़का उसके व्यवहार से तंग आकर घर छोड़कर चला गया। चलते-चलते एक गांव में पहुंचा और गांव वालों से वहां रहने के लिए जगह की मांग की। गांव वालों ने उसे ठहरने के लिए जगह नहीं दी। गांव के एक बुजुर्ग ने कहा—आपको यहां रहना ही है तो यहां से कुछ दूर पर एक मंदिर है जो खाली है वहां कोई नहीं रहता वहां जाकर तुम रह लो। हां! लेकिन इतना ध्यान रखना वहां रात में भूत आता है, वह तुम्हें खा जायेगा। उस लड़के ने सोचा कि सौतेली मां के हाथों मरने की अपेक्षा तो भूत के द्वारा मरना ज्यादा अच्छा है। वह लड़का वहां रहने को तैयार हो गया। रात को बारह बजे सचमुच विशालकाय भूत आ पहुंचा और उस लड़के की ओर घूर कर देखते हुए कहा कि मैं तुम्हें खा जाऊंगा। लड़का हाथ जोड़कर बहुत रोया-गिड़गिड़ाया और कहा—मुझे मत मारो, मत खाओ, मैं आपकी हर प्रकार से सेवा करूंगा। भूत शांत हो गया। भूत ने कहा कि देखो मैं तुम्हें एक शर्त पर छोड़ूंगा, तुम्हें मेरी आज्ञा के बगैर इस घेरे से बाहर नहीं जाना है। यदि कहीं तुम बाहर गये तो मैं तुम्हें खा जाऊंगा। लड़का ने कहा—ठीक है। कुछ दिन बीता, एक दिन भूत ने लड़के से कहा—आज मैं यमलोक जा रहा हूं, तुम्हें भी यमराज से कुछ कहना हो तो बताओ। लड़के ने कहा आप यमराज से पूछना मेरी आयु कितनी है। भूत जब यमराज के यहां से लौटकर आया, तब लड़का से कहा कि यमराज ने तुम्हारी आयु 70 साल बताया है। कुछ दिन और बीतने के बाद भूत ने लड़के से फिर कहा कि आज मैं यमराज के यहां जा रहा हूं, तुम्हें उनसे कुछ पूछना हो तो बताओ। लड़का ने कहा—अबकी बार यमराज से कहियेगा कि मेरी उम्र में से या तो एक दिन कम कर दे या फिर एक दिन बढ़ा दे। भूत जब यमराज के यहां से लौटकर आया तो लड़के से कहा—यमराज ने कहा है कि तुम्हारी उम्र में से न तो एक दिन कम किया जा सकता है और न ही एक दिन बढ़ाया जा सकता है। लड़का को तो मानो खुशी का खजाना मिल गया। एक दिन लड़का मंदिर से बाहर जाने लगा तो भूत उसे डांटा और उसे खाने के लिए दौड़ा। लड़का चुल्हे से जलती हुई लकड़ी लेकर भूत की ओर दौड़ा। आग को देखकर भूत सदा के लिए भाग गया।

कहानी काल्पनिक है भूत-प्रेत कुछ होता नहीं है। यहां इस कहानी का सार यह है कि लड़का के प्रारब्ध आयु में से यमराज भी एक दिन कम-ज्यादा नहीं कर सकता तो फिर हम अपने प्रारब्ध से क्यों विचलित एवं चिंतित हों। हिम्मत से काम लें, प्रारब्ध पर भरोसा रखें। सद्गुरु श्री अभिलाष साहेब जी के गृह त्याग के समय उनके पिता जी ने उनसे पूछा—साधु होने जा रहे हो कहीं बीमार पड़ गये तो दवाई-पानी कौन करेगा, भोजन-पानी कौन देगा? गुरुदेव जी ने कहा—स्वतंत्र घूमने वाले पशु-पक्षियों का जीवननिर्वाह जब हो जाता है तो हमारा भी हो जायेगा। तब गुरुदेव जी के पिता जी ने कहा—अच्छा, जब इतना विश्वास है तब कोई बात नहीं।

—क्रमशः

प्रवचन

हमें भय क्यों होता है?

(परम पूज्यवर गुरुदेव श्री अभिलाष साहेब जी द्वारा दिनांक 31-5-2005 को कबीर संस्थान, सूरत में ध्यान शिविर के अवसर पर दिया गया प्रवचन।—प्रस्तुति श्री रामकेश्वर जी)

पूजनीय संत समाज, प्रिय सज्जनो तथा देवियो! हमें भय क्यों होता है? यह प्रश्न हम अपने आप से पूछें और इसके उत्तर का पता लगायें। विचार करने से लगता है कि जो वस्तुएं कमजोर हैं, उन्हीं को लेकर हमें भय होता है और दुनिया की सारी वस्तुएं कमजोर हैं। उनके छूट जाने का भय सबसे बड़ा भय है और यह तो पक्का है कि सबकुछ छूट जायेगा। आज तक किसी का भी कुछ रहा नहीं है। पहले के जितने लोग रहे उनका कुछ नहीं रहा। इसी प्रकार जो आज हैं उनका भी कुछ नहीं रहेगा और आगे जो रहेंगे उनका भी कुछ नहीं रहेगा। जिसको छूटना ही है उसको लेकर भय क्यों हो। लेकिन इतना समझ जाने पर भी भय क्यों होता है?

समझते तो सब हैं कि सब कुछ को छूटना है। कौन नहीं जानता है कि देह छूट जायेगी। अनाड़ी से अनाड़ी आदमी भी यह जानता है कि सबकी देह छूटती है और मेरी भी छूट जायेगी लेकिन उसको भय होता है, क्यों होता है क्योंकि ज्ञान का अभ्यास उसने नहीं किया है।

अधिक ममता में भय होता है और हलकी ममता में भी भय होता है। कामचलाऊ ममता की जाये तो उसमें भी कुछ भय होता है लेकिन वह भय बांधनेवाला नहीं होता है। वह भय जो आदमी को बेचैन करे, विश्राम न लेने दे, बंधन है। कहीं सांप है और वहां सावधान रहे और भय करे तो बुरा नहीं है। भैंसा आ रहा है तो उससे भय करना बुरा नहीं है। उससे भय करो और उससे दूर हटकर चलो तो ठीक है। कहीं जा रहे हो तो मकान में ताला लगा दो और किसी को सुपूर्द कर दो कि वह देखभाल करता रहे। इस प्रकार व्यवहार करना बुरा नहीं है। पूर्णज्ञान हो जाने पर भी कुछ न कुछ भय तो रहता ही है। जो चीज अपने साथ रहती है वह बिखर न जाये, टूट न जाये, यह ख्याल तो ज्ञानी को भी रहता है। पूर्ण ज्ञान का मतलब है पूरी निर्मोहता। ज्ञान का अर्थ है जानकारी और यह एक सीमा में है। ज्ञान का असली अर्थ है निर्मोहता।

व्यावहारिक क्षेत्र में जानना ही ज्ञान है। इसलिए ज्ञान में सबकी सीमा है। एक बड़ा इंजीनियर है लेकिन वह साइकिल का पंचर बनाना नहीं जानता है तो उसके लिए वह अज्ञानी है लेकिन जिस विषय में वह इंजीनियर है उसमें तो वह ज्ञानी है ही। और साइकिल का पंचर बनानेवाला आदमी भले इंजीनियरी में ज्ञानी नहीं है लेकिन पंचर बनाने के विषय में तो ज्ञानी है ही। कहने का तात्पर्य है कि कोई भी आदमी ऐसा नहीं है जिसमें कुछ न कुछ ज्ञान न हो और कोई आदमी ऐसा नहीं है जिसमें सबकुछ का ज्ञान हो। सबकुछ का ज्ञान किसी को नहीं होता है इसलिए हर इंसान ज्ञानी है और अज्ञानी है।

आध्यात्मिक भाषा में ज्ञानी वह है जिसके मन में मोह न हो। पूरा निर्मोह होने पर भी वह जिन व्यक्तियों और वस्तुओं से जुड़ा होगा उनमें छुटने और मिटने का थोड़ा-मोड़ा भय तो हो ही सकता है लेकिन वह भय बांधनेवाला नहीं होगा।

ज्ञानी को भी सुरक्षा की दृष्टि रहती है। ज्ञानी का यह मतलब नहीं है कि वह एकदम अव्यावहारिक हो जाता है। ज्ञानी व्यावहारिक रहता है इसलिए उचित व्यवहार करता है और समझ-बूझकर काम करता है। भय गहरा है या हलका यह जानना महत्त्वपूर्ण है। भय के स्तर से बड़ा अन्तर हो जाता है। भय के मूल में मोह होता है, ममता होती है, लगाव होता है और वह मोह, ममता और लगाव जितना घटेगा भय भी उतना घटेगा।

कोई बिलकुल निर्मोह पुरुष है और उसके सामने अगर उसके किसी निकट व्यक्ति की मृत्यु हो जाये तो एक दृश्य ऐसा होगा जिसमें वह गंभीर होगा किंतु उसमें उसको कोई पीड़ा नहीं होगी, कोई व्याकुलता नहीं होगी, कोई परेशानी नहीं होगी। केवल गंभीर हो जायेगा बस। इतना तो वहां भी होगा लेकिन वह कुछ बंधनदायी नहीं है लेकिन जिस मानसिकता से मन बेचैन हो जाये, अपने ज्ञान में ठहर न पाये, शांति न मिले वह मानसिकता बंधन है और बंधन का लक्षण है दुखी होना। वर्तमान में आदमी दुखी है तो वह बंधन में है। दुखी होने से मन में उद्वेग होता है, पीड़ा होती है और बारम्बार उसी तरफ मन खिंचता है। फिर वह आत्मशांति में नहीं रह सकता है। शुरू में मैंने प्रश्न उठाया था कि भय क्यों होता है। उसका उत्तर है कि भय इसलिए होता है क्योंकि ममता है। जिन व्यक्तियों, वस्तुओं और परिस्थितियों से हम जुड़े हैं वे सब दुर्बल हैं। इसलिए हम उनको लेकर भयभीत हैं कि "यह" न बिगड़ जाये, "वह" न बिगड़ जाये, "ऐसा" न हो जाये, "वैसा" न हो जाये।

भय का एक मानसिक रोग होता है। उसकी बात मैं यहां नहीं करता हूं। जिसको भय का मानस रोग होता है वह मानसिक रोगी हर जगह भयभीत रहता है। एक सज्जन थे बूढ़े। उनको फूल से भय हो जाता था। अगर कुआं के पास फूल के पौधे लगे हों तो वहां वे स्नान नहीं कर सकते थे। वे डरते थे। जब कभी वे मेरे पास आते तो टेबल पर फूल लोग चढ़ाते रहते हैं तो जब वे फूल देखते तो घबरा जाते और कहने लगते कि साहेब! मैं वहां कैसे आऊं क्योंकि वहां के फूल से डर लगता है। तब फूल को मैं हटवा देता। उनको मैं बहुत समझाता कि फूल में ऐसा कुछ नहीं है लेकिन अब उनका मानसिक रोग था। इसलिए मानसिक रोग एक अलग विषय है। सामान्य मनुष्यों में जो भय होता है उसकी चर्चा यहां की जा रही है।

सामान्य मनुष्यों के मन में बिछुड़ जाने और बिगड़ जाने का भय ज्यादा होता है। अपमान होने का भय ज्यादा होता है। उनके मन में यह भय होता है कि अगर मैं अमुक जगह जाऊं तो मेरा सम्मान हो कि न हो, अमुक लोग हमारी निंदा करते हैं तो वहां अगर मैं जाऊं तो ऐसा न हो कि मेरी निंदा हो। मेरा व्यापार कहीं बैठ न जाये, मेरी खेती नष्ट न हो जाये, मेरा लड़का विमुख न हो जाये इसप्रकार इन सब बातों को लेकर मनुष्य के दिमाग पर भय सवार रहता है और यही विवेक की दुर्बलता है।

होनहार सोई तन होई, ताहि मानि जीव काहेक रोई।
तू अविनाशी सुख में कहिये, याहि जानि धीरता लहिये॥

श्री पूरण साहेब ने कहा है कि जो शरीर का होनहार है वही होगा इसलिए उसको लेकर मनुष्य क्यों रोये।

मनुष्यों में सबसे बड़ा भय मृत्यु का है और मृत्यु में कुछ रखा नहीं है। मृत्यु तो एक बहुत पतला परदा है और उसके पीछे कुछ भी नहीं है। सो जाना ही मृत्यु है। मृत्यु और क्या है! हम रोज-रोज सोते हैं और जब सोने चलते हैं उस समय कोई अगर विघ्न पैदा करने लगे तो हमें बड़ा बुरा लगता है क्योंकि सोना हमें आनन्दकर है।

जैसे सोना-चांदी मूल्यवान हैं उसी प्रकार सोना भी मूल्यवान है। सबको चाहिए कि चौबीस घंटे में छः घंटे जरूर सोये। सोना बहुत जरूरी है और सोने में बड़ा सुख लगता है। जब हमें चार-छः घंटे का सोना इतना अच्छा लगता है तब वह सोना कितना अच्छा होगा जिसमें नींद फिर टुटे ही न। जो सदा के लिए सोना है उसमें कोई तकलीफ नहीं है। लेकिन यदि कुछ तकलीफ उसमें है तो बस यही है कि यहां वाला सब छूट जायेगा और यहां वाला तो सबका छूटा ही है। यहां वाला रहा किसका है!

यहां वाला सबका छूटकर रहेगा चाहे जागकर बैठे ही रहो। तुम्हारा जितना वर्तमान का है वह रहेगा नहीं, यह पक्का जान लो। देखो! सौ वर्ष के पहले की चीजें आज कहां हैं। म्युजीयम में कुछ रखी हों तो रखी हों लेकिन वह भी कुछ ही दिनों की ही हो सकती हैं। आपके घर में सौ वर्ष पुरानी चीजें दुर्लभ हैं। बड़े-बड़े शहरों में भी सौ वर्ष के मकान कम ही होते हैं और

गांवों में तो करीब-करीब होते ही नहीं और होते भी हैं तो बहुत कम। महाकाल में बीच में सौ वर्ष के समय का क्या महत्त्व है। काल अनादि और अनन्त है। सौ वर्ष का समय उस अनादि और अनन्त काल के सामने एक क्षण से भी कम है।

तो भाई! यह पक्का जानो कि तुम्हारा जो कुछ है वह रहेगा नहीं। उसका भय मत करो। उसका जो भय है उसे मिटाओ। वह भय विवेक से मिटेगा। जब आदमी रोज बैठकर इसपर सोचता है तब धीरे-धीरे भय घटता जाता है। व्यापार में घाटा न हो जाये, नौकरी छूट न जाये, खेती डूब न जाये, अपमान हो न जाये, बीमारी लग न जाये—इनका भय होता है। भयंकर बीमारी अगर लग जाये तो क्या होगा, तब मेरी सेवा कौन करेगा। मेरे लड़के नहीं हैं तो मेरी सेवा कौन करेगा। इसप्रकार नाना प्रकार का और व्यर्थ का भय आदमी के मन में होता है। और जिसको सोच-सोचकर भय करते रहो उनमें से बहुत चीजें होती ही नहीं हैं।

किसी को बीमारी लगती है यदि उसके कोई नहीं है तो उसकी भी सेवा हो जाती है। लेकिन जिनके बहुत रहते हैं क्या उनकी बहुत सेवा हो जाती है। जिनके लड़के रहते हैं क्या उनकी रात-दिन सब आरती उतारते हैं। लड़केवालों की दुर्दशा को आपने देखा है कि नहीं। जिनके लड़के हैं अपने लड़कों से कितनी सेवा मिल रही है उनको, यह तो वे लोग जानते ही होंगे और लड़के भी बेचारे क्या करेंगे। वे भी अपना कमायेंगे और खायेंगे।

यह तो कहीं बिरले होता होगा कि किसी का लड़का शाम को उसका पैर दबाता हो। पैर दबवाने से कोई फायदा भी नहीं है। कोई पैर दबा दिया तो उसमें क्या मिलता है। तुम्हारे लड़का है तो तुम कमाओ और उसकी उचित परवरिश कर दो। उसके साथ प्यार का बरताव करो। उसको सदाचार और नैतिकता की शिक्षा जितना दे पाओ दो। जब तुम बुढ़ा जाओगे तो वह लड़का कमायेगा और तुम्हें भी खिलायेगा। लेकिन अगर तुम्हारे लड़का नहीं रहेगा तो भी तुम खाओगे यह विश्वास करो।

जिनके सौ हैं उनका जीवन चलता है। जिनके पचास हैं उनका जीवन चलता है। जिनके पचीस हैं, दस हैं, पांच हैं, दो हैं या एक है उनका जीवन चलता है और जिसके कोई नहीं है उसका भी चलता है। लेकिन सुख से कौन रहता है वही जो विवेकी है। सौ पुत्र रहने से हम सुख से नहीं रह सकते किंतु विवेक रहने से ही हम सुख से रह सकते हैं। अगर हमारे पास सौ लोग हैं और हम विवेकी नहीं हैं तो हम सुखी नहीं होंगे। अगर हम विवेकी हैं तो सौ हों, पचास हों, बीस हों, दस हों, दो हों, एक हों, कोई न हो लेकिन सब समय हम सुखी होंगे। सच्चा जीवन वही है जो स्वावलम्बन पर निर्भर हो। अपने आप पर निर्भर रहो। आत्मनिर्भर रहना ही सच्चा जीवन है। व्यवहार में एक दूसरे से सम्बन्ध लेना पड़ता है लेकिन एक दूसरे से सम्बन्ध लेते हुए भी सबको निष्काम रहना चाहिए।

अवध क्षेत्र की एक कहावत है "मांगबो भलो न बाप से जो विधि राखै टेक" इसका अर्थ है कि अगर विधि अर्थात विधाता मेरी टेक को रखे तो मैं यही चाहूंगा कि पिता से भी कुछ न मांगूं। अपने ऊपर निर्भर होना, स्वावलम्बी होना यह व्यक्ति का सबसे बड़ा महत्त्व है और इसी प्रकार यह भी समझो कि सुख हमारे ही ऊपर निर्भर है।

सुख धन पर निर्भर नहीं है, पद पर निर्भर नहीं है। जीवन में पद की जरूरत तो नहीं है लेकिन धन की जरूरत है और आदमी अगर हाथ-पैर मारता रहे तो कम-ज्यादा या काम भर का धन सबको मिलता रहता है। उसके लिए बहुत सोचने की जरूरत नहीं है किंतु उद्यम करने की जरूरत है। कुछ करने में जो मिले उसमें संतुष्ट रहना चाहिए। अधिक के लिए चिंता करना व्यर्थ है। चिंता से कोई फायदा नहीं होता है बल्कि और नुकसान होता है। भय मन की दुर्बलता है और यह विवेक से कटेगा। विवेक नहीं होगा तो जिंदगी बीत जायेगी जीवन भय से भरा रहेगा।

आप में भोग की भावना है तो भय होगा। किसी पर आप कब्जा करना चाहते हैं तो भय होगा। आपके

घर में आपकी पत्नी है और उसपर आप कब्जा करना चाहते हैं। आप चाहते हैं कि वह एकदम आपकी उंगली पर नाचती रहे तो आपको भय होगा। उसको स्वतंत्र कर दो। वह घर में रहे, सेवा करे, अपना काम करे और तुम भी अपना काम करो। अपनी सेवा अपने ढंग से तुम करो और तुम्हारी पत्नी भी अपनी सेवा अपने ढंग से करे। और यह समझो कि वह भी एक व्यक्ति है और मैं भी एक व्यक्ति हूं। उसको सहयोग करना है। उसके लिए हमारा यही सहयोग होना चाहिए कि वह प्रसन्न रहे।

अपनी तरफ से पत्नी को प्रसन्न रखने का सहयोग करना चाहिए। उस पर लदने का प्रयास नहीं करना चाहिए कि वह मेरे अधीन रहे, मेरी उंगलियों पर वह नाचे, जैसा मैं कहूं वैसा ही वह करे, उलटा न करे। इस प्रकार बहुत ख्वाहिश न रखो और पत्नी को आप स्वतंत्र कर दो और आप स्वयं उसका सहयोग करो तो वह स्वयं आपको सहयोग करेगी और कहीं लदना चाहोगे तो भय होगा क्योंकि लदना किसी को पसन्द नहीं है। हमारे ही ऊपर कोई लदना चाहे तो हमें कहां पसन्द होगा। लदने का मतलब है कब्जा करने की चेष्टा। कोई ऐसा करेगा तो हम ऊब जायेंगे। इसलिए किसी पर लदना न चाहो।

अपने अधिकार में करने की जो चेष्टा है वही भय का कारण है। किसी के अधिकार में कुछ रहता नहीं है। एक सहयोग है, एक व्यवहार है और व्यवहार में सब अधिकार में तो रहता ही है। आपका घर-परिवार आपके अधिकार में हैं। सब चल रहा है लेकिन अधिकार का अनुभव न करो। समझ लो कि घर एक ट्रस्ट है। आप ट्रस्टी हैं, सेवा कर रहे हैं बस।

घर भी एक ट्रस्ट है। छोटे-बड़े सब एक दूसरे के सहयोगी हैं। छोटी-बड़ी उम्र में हैं, पद में हैं लेकिन सब सहयोगी हैं। व्यवहार में पिता का पद ऊंचा है और पुत्र का छोटा लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि पुत्र का व्यक्तित्व छोटा है। पुत्र का व्यक्तित्व अपना है और पिता का अपना है। दोनों महान और दोनों समान हैं। मर्यादा में छोटे-बड़े हैं, बस इतना है। अपने आसपास के लोगों के अस्तित्व का ख्याल रखो। किसी पर लदने की, उनको अपनी मुट्ठी में करने की चेष्टा न करो। कामना से भय होता है और अगर किसी से कोई कामना न रखो तो भय घट जायेगा। अगर कहीं कामना रखोगे तो भय बढ़ जायेगा।

हमारा शरीर भय की खानि है। शरीर के साथ छोटा-मोटा भय लगा ही रहता है। अंधियारे में चल रहे होते हैं तो यह भय होता है कि सांप पैर के नीचे न पड़ जाये। इसका मतलब यह नहीं है कि इसका ध्यान ही न रखा जाये । अंधियारे में चलते हो तो टार्च ले लो। नहीं कुछ है तो कम से कम एक डण्डा ही ले लो उसको आगे ठोंकते चलो जिससे जो जीव-जन्तु हों वे ठोंकने की आहट पाकर इधर-उधर हट जायें। अंधियारे में सावधान होकर चलना, टार्च लेकर चलना या डण्डा लेकर चलना बुरा नहीं है। यह शरीर जबतक है तबतक अनुकूल-प्रतिकूल सर्वथा मिटता नहीं है। ज्ञानी और जीवन्मुक्त पुरुष का भी नहीं मिटता है।

जीवन्मुक्त पुरुष के मन का द्वन्द्व तो मिटा रहता है लेकिन अनुकूल-प्रतिकूल नहीं मिटता है। उनके जीवन में भी शरीर के स्तर से कहीं ताप आ रहा है, कहीं गर्मी आ रही है, तो उसको सहना है। बहुत ठण्डी है तो उसको सहना है। भूख लग गयी है और अभी भोजन नहीं मिल रहा है तो भूख के वेग को सहना है। धैर्य रखना है कि समय से मिलेगा और देर से भी मिल सकता है। भोजन देर से भी मिलता है और जल्दी भी मिलता है।

शरीरधारी को, भले ही वह जीवन्मुक्त और कृतार्थ आत्मा हो, देह सम्बन्ध में अनुकूल-प्रतिकूल मिट नहीं सकते। देह समाप्त होने पर ही अनुकूल और प्रतिकूल मिटता है और उसमें थोड़ा-थोड़ा जो भय लगा रहता है वह कोई बन्धन नहीं है। आपका मन जब विवश करे और आपको बैठने न दे, चैन न लेने दे, शांति से न रहने दे वह बंधन है। ममता जितना प्रगाढ़ रखोगे बंधन की यह दशा आयेगी। ज्यादा ममता रखोगे तो चैन से नहीं

रहोगे। ज्यादा मोह रखोगे तो चैन से नहीं रहोगे। इसलिए मोह और ममता को घटाओ और निरन्तर विवेक का मार्जन करो।

लोग अभ्यास नहीं करते हैं इसलिए उनका मन मंजता नहीं है, चमकता नहीं है। रोज अभ्यास करने की जरूरत है। अगर कोई कपड़े साफ न रखे, मंजन न करे और दांत साफ न रखे, आंख, नाक, कान सब को साफ न रखे तो सब गंदे-गंदे होंगे। जिनके सफाई निरन्तर रहती है उनके सब इन्द्रियां स्वच्छ रहती हैं। ऐसे मन की बात है। जो मन को नहीं मांजेगा, रोज अकेले में नहीं बैठेगा, स्वाध्याय नहीं करेगा, आत्मचिंतन नहीं करेगा, उसका मन गंदा रहेगा। उसका मन भयभीत, पीड़ित, संतापित, उलझा हुआ और उद्वेगित रहेगा।

देखा जाता है कि सुबह उठकर लोग सफाई करते हैं। आदमी सुबह टट्टी-पेशाब को शरीर से निकाल देता है। मंजन करता है, स्नान करता है, कपड़े धोता है, बरतन धोता है, घर में झाड़ू-पोंछा लगाता है, सब कुछ की सफाई करता है, केवल मन को गंदा करता है। उसके लिए उसमें कोई ख्याल ही नहीं रहता है कि मन को साफ करना है। कपड़ा साफ करना है, घर साफ करना है और शरीर को साफ करना है। यह उसकी समझ में आता है लेकिन मन को साफ करना है यह उसकी समझ में नहीं आता है।

सुबह ही से उठकर मन में गंदगी भरना शुरू हो जाता है। भाई के लिए ईर्ष्या, माता-पिता के लिए द्वेष, पत्नी के लिए कलह, पति को देखकर वैमनस्य होने लगता है, पड़ोसी को देखकर बुखार चढ़ जाता है। इस प्रकार आदमी प्रातः से ही उठकर मन को खराब करना शुरू करता है। उसने सब चीजें साफ किया लेकिन अपने मन को गंदा किया। यह जीवन का सही तरीका नहीं है। सबकुछ साफ करो लेकिन मन को अधिक साफ करो। बाहर सफाई में कहीं कुछ कसर रह जाये तो रह जाये लेकिन मन की सफाई में कहीं थोड़ी भी कसर न हो। जब यह ख्याल रखोगे और रोज एकान्त में बैठोगे, सोचोगे तब मन के विकार घटेंगे।

यथैव बिम्बं मृदयोपलिप्तं तेजोमयं भ्राजते तत्सुधान्तम्।
तद्वात्मतत्त्वं प्रसमीक्ष्य देही एकः कृतार्थो भवते वीतशोकः॥

यह श्वेताश्वतर उपनिषद् का वचन है और बहुत बढ़िया मंत्र है। ऋषि कहते हैं कि जैसे मणि में मिट्टी लिपटी रहती है लेकिन अच्छी तरह से धो देने पर वह चमकने लगती है इसी प्रकार आत्मतत्त्व का जो प्रसमीक्षण कर लेता है, अपने आपको जो धो लेता है वह "एक", "कृतार्थ" और "वीतशोक" हो जाता है अर्थात वह एक हो जाता है, कृतार्थ हो जाता है और शोक से मुक्त हो जाता है।

एक का अर्थ है कैवल्यभाव, अकेलेपन का भाव और कृतार्थ का मतलब है तृप्त आत्मा। वीतशोक का मतलब है मन की पीड़ा समाप्त हो जाती है। मणि में मिट्टी लगी है तो मणि नहीं दिखती है क्योंकि उसमें मिट्टी लगी है लेकिन जब उसको धो दिया गया तब वह चमकने लगी। उसी प्रकार मनुष्य दुखी है, पीड़ित है। जब वह अपने को धो देता है तब कृतार्थ हो जाता है। यह आत्मशोधन का काम है।

यह आत्मशोधन जीवन का महत्त्वपूर्ण काम है और यह काम करनेवाले संसार में बहुत दुर्लभ हैं। आप एक तरफ से गांव-गांव और मुहल्ला-मुहल्ला सर्वेक्षण करना शुरू करो तो कोई-कोई ऐसा मिलेगा जो सुबह-शाम थोड़ा बैठकर कुछ पूजा-पाठ, जप-वप कुछ करता हो। यह भी एक प्रकार का आत्मशोधन ही है। विचार, चिंतन और विवेक तो दुर्लभ है। उसको तो जो विवेकी संतों की संगति करेगा वही समझेगा। बाकी लोग तो कहीं नाम जपते हैं, मंत्र जपते हैं, पूजा करते हैं, पाठ करते हैं। चलो, वह भी कुछ ठीक है लेकिन अकेले में बैठकर आत्मशोधन यानी अपने पर ध्यान देना, अपने गुण-दोषों को देखना, सद्गुणों को बढ़ाना और बुराइयों को घटाना यह काम करने वाले बहुत कम हैं। इसीलिए बाहर से भरे-भरे दिखते हुए भी इंसान भीतर से दुखी-दुखी है। आदमी बाहर से सम्पन्न और भीतर से विपन्न है।

स्वामी रामतीर्थ एकबार विदेश में थे तो एक नर्तकी उनसे मिलने के लिए आयी। उनके कमरे में जब वह आयी तो उनका पूरा कमरा सुगंधी से भर गया। इतने सुगन्धित द्रव्यों का अनुलेपन नर्तकी अपने शरीर और वस्त्र पर किये थी कि उसकी सुगंधी से स्वामी जी का पूरा कमरा सुगंधित हो गया। वह कीमती जेवरों से लदी भी थी। वह नर्तकी हंसती हुई उनके पास आयी और बैठी।

स्वामी जी ने जब उससे कुशल-मंगल पूछा तो उसने रोना शुरू कर दिया और कहा कि महाराज, मैं बहुत दुखी हूं।

स्वामी जी आश्चर्य में पड़ गये और सोचने लगे कि यह नर्तकी जो इतने कीमती जेवरों से लदी है और इतने सुगन्धित द्रव्यों से अपने को अनुलेपित किये है, कह रही है कि महाराज मैं बहुत दुखी हूं। उन्होंने उससे कहा—देवी! अभी जब तुम मेरे कमरे में प्रवेश की हो तो पूरा कमरा मानो हंस दिया है और तुम दुखी हो। यह बड़ा आश्चर्य है!

उसने कहा—"महाराज, मैं नर्तकी हूं और हंसना मेरा स्वभाव है। इसलिए हंसती हुई आयी। मेरे पास पैसे हैं इसलिए सब शृंगार है लेकिन अन्दर मेरा हृदय जल रहा है।" स्वामी रामतीर्थ ने अपनी किताब में खुद यह लिखा है। और एक के लिए ऐसी बात नहीं है यह तो दुनिया में सर्वत्र व्याप्त है। ऐसे लोग विदेशों में अधिक हैं तो हमारे देश में भी कम नहीं है। विदेश हो चाहे स्वदेश, हर जगह बात वही है। बाहर से सम्पन्नता है और भीतर से विपन्नता। बाहर भरा-भरा दीखता है और भीतर खाली-खाली रहता है। क्यों? क्योंकि असली काम नहीं किया जा रहा है। असली काम है आत्मशोधन। अपने को ठीक करना। अपने को संभालना। अपने को समझना।

आप शुद्ध चेतन हैं, ज्ञानमात्र हैं। आप स्त्री-पुरुष, काला-गोरा नहीं हैं। आप ब्राह्मण-शूद्र, हिन्दू-मुसलमान नहीं हैं। आप बालक-बूढ़े भी नहीं हैं। आप शुद्ध चेतन हैं। आप किसी के नहीं हैं और आपका कोई नहीं है। "मेरा और आपका" यह तो देह व्यवहार में माना जाता है। व्यवहार में सब सबके हैं लेकिन मूलतः कोई किसी का नहीं है।

यह आत्मा किसी का अंश नहीं है और किसी का अंशी भी नहीं है। यह कारण नहीं है कार्य भी नहीं है। यह कारण-कार्य से रहित, अंश-अंशी भाव से रहित, शुद्ध-बुद्ध निर्मल है। इसमें कोई दुख नहीं है। तुम वही आत्मा हो। तुम्हारे में कोई दुख नहीं है। दुख तो तुम बना-बनाकर भोग रहे हो। तुम ममता बना लिए तो दुख शुरू हो गया, मोह बना लिए तो दुख शुरू हो गया, आदत बना लिए दुख शुरू हो गया। जीव तो अपने ही अज्ञान से दुख बनाता है। अपने में दुख नहीं है। अकेले में बैठो और इस ढंग के ग्रंथों का अध्ययन करो और इस ढंग का चिंतन करो जिसमें विवेक-विचार की बातें हों, अनासक्ति की प्रेरणा हो और अपने मन के मोह पर विवेक का कुल्हाड़ा मारो। तब देखो धीरे-धीरे सारे विकार कट जायेंगे और निर्भयता आ जायेगी।

यह भी पक्का करके समझ लो कि जो होना है वह तो होता है। "होता है", "है", और "चाहिए" ये तीन बातें विचारणीय हैं। "होता है" यानी जो भवितव्य है। "है" यानी जो स्थिर है और "चाहिए" यानी चाहना और उसकी कोई सीमा नहीं है। "है", "होता है" और "चाहिए" इन तीन बातों पर विचार कीजिए।

"है" सत्, "होता है" भवितव्य और "चाहिए" इच्छा है। "है" सत् और वह आपकी आत्मा है और "होता है" वह भवितव्य है। बाल पकते हैं, दांत उखड़ते हैं। चाम में सिकन आती है, अनुकूल प्रतिकूल होते हैं और प्रतिकूल अनुकूल। संयोग में वियोग होता है और वियोग में संयोग। सुख मिलता है दुख मिलता है, सम्मान मिलता है और अपमान मिलता है। यह सब होता है।

"चाहिए" की व्याख्या बड़ी लम्बी है। उसका तो कोई ठिकाना ही नहीं है कि क्या-क्या चाहिए। मनुष्य को "चाहिए" पर यानी चाहना पर संयम करना चाहिए। मनुष्य को चाहिए कि वह अपनी इच्छाओं पर संयम

करे। चाहनाएं पूरी नहीं होती हैं। चाहनाओं की निवृत्ति होती हैं। चाहनाओं की पूर्ति नहीं होती है। आप चाहनाओं को पूरी नहीं कर सकते हो इसलिए चाहनाओं को छोड़ दो।

मन में जो-जो चाहनाएं उठें उनको छोड़ते रहो। विवेकपूर्वक चाहना रखो, अविवेकपूर्वक चाहना न रखो। इस प्रकार अपने मन को शोधो और इच्छाओं पर संयम करो। और जो "होता है" वह भवितव्य है वह होगा। उसमें निर्भय रहो। बाल पकना शुरू हो और आप रोना शुरू करो तो क्या होगा। रोने से क्या सफेद बाल काले हो जायेंगे। रोने से काला नहीं होगा। काला है तो काला है और उजला है उजला है। दांत उखड़ते हैं। आंख की रोशनी घटती है। अनुकूल प्रतिकूल हो जाते हैं और प्रतिकूल अनुकूल हो जाते हैं और फिर कोई साथ में नहीं रह जाता है।

जिन बातों को लेकर आज से दस वर्ष पूर्व आप बहुत उद्वेगित हो गये थे उसको आज जब आप याद करते हैं तो क्या उसपर आपको हंसी नहीं आती है। उसको आप जब याद करते हैं तो आपको गुदगुदी लगती है कि अरे! मैं इन्हीं बातों को लेकर उद्वेगित हो रहा था जो आज कुछ भी नहीं है। आज की बातें भी उसी तरह हैं और कुछ दिनों में वे भूल जायेंगी और उनका कोई मूल्य नहीं रह जायेगा। सब कुछ भागा जा रहा है। अकेले में बैठो और इस संसार को पढ़ो। इस संसार की नश्वरता और अपनी आत्मा की अमरता पर विचार करो।

यह संसार एक खुली किताब है। इस संसार की किताब को समझने के लिए ही कागज की किताब बनी है क्योंकि सीधे लोग नहीं समझ पाते हैं तो कागज की किताब पढ़कर थोड़ा ध्यान दें। नहीं तो यह दुनिया खुली किताब है। देख रहे हैं न कि यहां कुछ स्थिर नहीं है और क्षण-क्षण सब भागा जा रहा है। ऐसी स्थिति को देखते हुए जो आदमी अपने को न संभाले वह कौन ज्ञानी है!

सब कुछ भागा जा रहा है यह सच है लेकिन यह भी सच है कि इसी में व्यवहार भी करना है। और व्यवहार को सच मानकर ही करना सम्भव है। झूठ मानकर व्यवहार नहीं होता है लेकिन सच कितने क्षण का है? थोड़े समय के लिए है। स्थिर सच नहीं है, क्षणिक सत है। समय खत्म हुआ व्यवहार खत्म हुआ। आपके यहां कोई आया तो आपने उसका स्वागत किया, आदर किया फिर वह चला गया। वह थोड़े समय तक रहा और उसके साथ व्यवहार निपट गया। अब वह क्षणिक है ऐसा मानकर आप उसका आदर न करें, सत्कार न करें तो व्यवहार खराब हो जायेगा। इसलिए जो विवेकपूर्वक व्यवहार है उसको करना चाहिए लेकिन कुछ स्थिर नहीं है ऐसा समझकर शोक से मुक्त रहना चाहिए।

प्रश्न होता है कि भय किसलिए है? यहां क्या आपका है जिसको लेकर भय हो। यहां किसी को और कुछ को अपना मानना छोड़ दो तो भय खत्म हो जायेगा। यह समझ लो कि सब कुछ प्रकृति का खेल है। भक्त मानता है कि सब कुछ भगवान का खेल है। और ज्ञानी मानता है कि सब कुछ प्रकृति का खेल है और दोनों बात एक ही है। कुछ अपने साथ नहीं है। इन बातों पर जो ज्यादा ध्यान देता है, चिंतन-मनन करता है उसका भय घटता जाता है और एक ऐसी अवस्था आती है जब उसका चित्त निर्भय हो जाता है। तनिक-तनिक बातों को लेकर जो भय होता है वह कोई बंधन नहीं है। मैंने कहा कि अंधियारे में पैर रखने से तो डर लगता है, यह कोई बुरी बात नहीं है। अंधियारा है तो प्रकाश जला दो। कोई हिंसक जन्तु उधर से आ रहा है तो डर लग रहा है तो डर लगना ही चाहिए। दूर हटकर चलो। यह कोई बंधन नहीं है।

बंधन तो चित्त की बेचैनी है। आप परेशान हैं आपको नींद नहीं आ रही है। भोजन नहीं पच रहा है। उलझन लगी है और आप शांत नहीं हो पा रहे हैं। विवेक-विचार में चित्त नहीं लग रहा है, आप प्रसन्न नहीं हैं तो यह बंधन है। जो सामान्य भय है वह व्यवहार में ही होता है जैसे कि हम बैठे हैं तो बैठे-बैठे तकलीफ होने लगती है। फिर जब चलने लगते हैं तो सुख लगने

लगता है। फिर चलते-चलते थक जाते हैं तो दुख लगने लगता है। तब बैठ जायें या लेट जायें तो आराम लगने लगता है। लेकिन बहुत देर तक लेटे रहें तो लेटे-लेटे भी तकलीफ लगने लगती है। तब चलने लगो तो आराम लगता है। तो यह सुख-दुख तो शरीर के साथ लगे रहते हैं और यह कोई बांधने वाले नहीं हैं। बांधने वाले सुख-दुख वह होते हैं जिनके बिना आपका मन बेचैन हो जाये ।

जिस सुख को आपने मान रखा है और वह मिल नहीं रहा है और जिसके बिना आप बेचैन हैं, रह नहीं पा रहे हैं तो यह बंधन है। प्रिय का वियोग हो गया तो उसमें थोड़ा दुख हो जाता है यह स्वाभाविक है। प्रिय का वियोग हो गया तो हो गया अब उसमें दुखी होने से क्या वह जी जायेगा।

जो हलका-फुलका सुख-दुख आता है यह तो शरीर के साथ रहता है। उससे मन पीड़ित नहीं होता है, बेचैन नहीं होता है। जो रागजनित सुख-दुख है वही मथता रहता है। कहीं मोह है और वह बिछुड़ गया तो आदमी को मथता रहता है। मोह ही आदमी को रात-दिन मथ रहा है। किसी के प्रति द्वेष है तो उसको उच्छिन्न करने की चेष्टा चित्त में निरन्तर मथ रही है कि कैसे उसको नीचा दिखायें तो यह बंधन है और ये सारे मानसिक रोग साधना अभ्यास न करने का परिणाम है।

आदमी केवल एकांगी हो गया है। पहले भी आदमी एकांगी था, आज भी है और आगे भी रहेगा क्योंकि इसकी सूझ बड़ी दुर्लभ है। ऐसी चर्चा करनेवाले बहुत कम हैं, सुननेवाले कम हैं और धर्म के क्षेत्र में भी जहां चर्चा होती है तो झूठी-झूठी महिमाएं ही बतायी जाती हैं। तमाम दगाबाज और धोखेबाज गुरु घूमते हैं। धर्म के क्षेत्र में तो जो बदमाशी है कि हद है।

दगाबाजों ने श्रीकृष्ण महाराज को पहले तो रसिया बनाया फिर खुद रसिया बन गये। श्रीकृष्ण महाराज रसिया नहीं थे। श्रीकृष्ण महाराज वीर, ज्ञानी और विचारक थे लेकिन हमारे देश का दुर्भाग्य है कि लटे और मलिन मनवाले लोगों ने उनको रसिया बना दिया। हर जमाने में कुछ धोखेबाज गुरु होते हैं जो अपने को कृष्ण पेश करते हैं। वे कहते हैं कि मैं कृष्ण हूं। कृष्ण रसिक थे मैं भी रसिक हूं तो कोई हर्ज नहीं है। ऐसे गुरु इतना दुराचार करते हैं कि क्या कहा जाये!

धर्म के क्षेत्र में बड़े-बड़े पाखण्ड हो रहे हैं। बड़ी-बड़ी धूर्तता की जा रही है। जो तेज दिमाग के लोग होते हैं वे देखते हैं कि यह सौदा बढ़िया है। धर्म का चोंगा पहन लिए और बस मंच पर आ गये भगवान का नाम लेते हुए, सौम्य चेहरा बनाकर और लोग उनपर लट्टू हो गये। फिर वे उनका बौद्धिक, आर्थिक और चारित्रिक सब प्रकार का शोषण करते हैं। ऐसे धोखेबाज गुरु सब समय रहते हैं।

आप अगर धार्मिक प्रवचन सुनने जायें तो देखेंगे कि प्रवचन में अधिकतम चर्चा चमत्कार की होती है। "भगवान ने यह कर दिया, भगवान ने वह कर दिया। महात्मा ने वह कर दिया। महात्मा जो चाहे कर सकते हैं। उनको समर्पित हो जाओ तुम्हारा बेड़ा पार कर देंगे। दूध और पूत सब दे देंगे।" इसप्रकार झूठी-झूठी महिमाओं का प्रचार बहुत है।

देवी-देवताओं की महिमा, भगवान की महिमा, महात्मा की महिमा, इसी में प्रवक्ता लोग सत्तर प्रतिशत समय बरबाद कर देते हैं। ज्ञान-विवेक की बात वे नहीं करते हैं। वे ऐसी बात नहीं करते हैं जिससे आदमी आत्मशोधन में लगे, अपने को सोचे, अपने को देखे। जो कुछ करोगे वैसा भरोगे, सब तुम्हारे ऊपर निर्भर है। धार्मिक लोग यह बात नहीं कहते हैं कि कोई आपको सुख और दुख देनेवाला नहीं है, कोई आपका पतन नहीं किया है और आपका कोई कल्याण भी करनेवाला नहीं है। धार्मिक लोग यह नहीं बताते हैं कि आपने स्वयं ही अपना पतन किया है और आप स्वयं ही ऊपर उठ सकते हैं। प्रवक्ता लोग लोगों को यह नहीं बताते हैं कि कुसंग नुकसानदेय है और सुसंग कल्याणकारी है लेकिन उसमें भी अपना ही परिश्रम है। आजकल धार्मिकों के पण्डालों में, उनके मंच पर इन बातों की चर्चा कम होती है।

धार्मिकों के प्रवचन में महिमा ही महिमा रहती है। उसमें कर्था-वार्ता, भुलावा, लोगों को भटकाना और धोखा ही देना रहता है। वे तो भगवान बनकर मंच पर आ गये झम्म-से और अपने को घोषित करा दिये कि 'हम' परमात्मा के अवतार हैं। हम भोग और मोक्ष देते हैं। ऐसी झूठी दिलासाएं देना यही सब ज्यादा चल रहा है। कहने का मतलब है कि आजकल धार्मिकों के प्रवचनों में निर्णय और चर्चा कम है। वे कहते हैं कि ऐसा सुननेवाले हो जायें तब तो सुनायें लेकिन आखिर लोग सुनते ही तो हैं। जब लोग झूठी महिमा सुनते हैं तो अगर उनको सही न्याय दिया जाये तो उसको भी वे जरूर सुनेंगे। बात यह कि ''साधु'' और ''गुरु'' कहलानेवाले जो धोखेबाज हैं उन्होंने लासा लगा दिया है कि हमारी शरण में आओ, हमारे पास आओ। हम छू-मंतर से सब प्रकार का कल्याण कर देंगे। हम रोग काट देंगे, बीमारी काट देंगे और पुत्र दे देंगे। आपकी निर्धनता मिट जायेगी, सम्पन्नता बढ़ जायेगी, पद पा जाओगे। ये सब झूठी-झूठी दिलासायें देते हैं और आम जनता उनमें फंस जाती है क्योंकि किसी-न-किसी प्रकार सबके पास कुछ-न-कुछ संकट है तो उसको लेकर वे ऐसे गुरुओं के पास डट पड़ते हैं।

मैं देखता हूं और आपलोग भी जानते हैं कि धनी और शिक्षितों का बहुत बड़ा तबका इसमें जाता है क्योंकि जो गरीब लोग हैं एक तो उनको फुरसत नहीं है। वे बेचारे मजदूरी करते हैं और जो सामान्य लोग हैं वे भी बेचारे अपने-अपने काम-धाम में लगे हैं। उनको फुरसत कम है और फुरसत भी हो तो भी उनमें लम्बी कामना नहीं होती है। वे सोच भी नहीं सकते हैं कि हम करोड़पति हो जायें और ऐसे बड़े गुरुओं को देने के लिए उनके पास सम्पत्ति भी नहीं है। वे बहुत दे सकते हैं तो सौ-पचास, दो सौ, चार सौ ही उनको दे सकते हैं, इससे ज्यादा नहीं दे सकते हैं। लेकिन जो धनी और शिक्षित वर्ग है उनकी कामनाएं भी लम्बी हैं और उनमें देने की शक्ति भी अधिक है। इसलिए बड़े गुरुघंटालों के पास ये धनी एवं शिक्षितों का एक तबका जाता है।

धनियों और शिक्षितों में भी कुछ विचारक हैं जो विचार करते हैं लेकिन अधिकतम तो भोले-भाले ही हैं। वे पाप कटाने और भोग-मोक्ष पाने में डट पड़ते हैं। धन-दौलत का ज्यादा विकार होने से संयम और त्याग उनके लिए और कठिन होता है। उलटा-सीधा काम तो लोग करते ही रहते हैं। वे सोचते हैं कि वह सब भी पाप कट जाये तो बड़ा अच्छा है। इसलिए ढोंगी गुरुओं के पास वे जाते हैं।

ऐसे गुरुओं के पास पेटेण्ट मंत्र होते हैं। वे बता देते हैं कि अगर व्यभिचार करते हो तो यह मंत्र पढ़ा करो तो पाप कट जायेगा। चोरी किये हो, धोखा दिये हो तो इस मंत्र से वह पाप कट जायेगा। इस प्रकार सारे पापों को काटने के लिए उनके पास मंत्र होते हैं। अब शिक्षित लोग इसको पाये तो बहुत खुश हुए। धनी लोग पाये तो बहुत खुश हो गये और सोचने लगे कि चलो पाप करते रहो और मंत्र जपते रहो तो पाप भी कटता रहेगा। यह सब जाल बहुत फैला है। जो समझ पाये वह इस जाल से अपने को बचाये। ऐसा कोई कानून नहीं है कि ऐसे लोगों को बन्द करवा दिया जाये। आपको स्वयं समझना-विचारना होगा और संभालना होगा।

अपने जीवन के कांटा-खोंभर को स्वयं साफ करना है। बढ़ई एक टेढ़ी-मेंढ़ी लकड़ी लेता है और उसको बसूला-रुखान से छीलकर साफ करता है और रन्दा से मांजता है और फिर धारदार कागज से मांजता है और पालिश करता है। फिर देखो, उस लकड़ी की बनी हुई वस्तुएं कितनी चमकने लगती हैं। क्या आप अपने पर ऐसा ध्यान देते हैं? नहीं देते हैं। अब ध्यान दो और अपने जीवन का जो कांटा-खोभर है, जो उलटा-पलटा है, उसको मांजो।

खजूर के पेड़ में नीचे से ऊपर तक देखो तो खूंटी-खूंटी दिखाई देती हैं। आदमी के जीवन में भी उसीप्रकार कांटे-कांटे, खूंटी-खूंटी हैं। विकार पर विकार, दोष पर दोष, दुर्गुण पर दुर्गुण और लम्पटता पर लम्पटता आदमी कमाता चला गया और अपना पूरा जीवन कण्टकाकीर्ण कर लिया। अपने जीवन को मांजने का

काम सोचता ही नहीं है। वे धन्य हैं जो जीवन को मांजने में लग जाते हैं।

हीरा जब मांज दिया जाता है तब उसका दाम दसगुना बढ़ता है। कच्चे हीरा का दाम अगर दस हजार है तो उसको तराश देने पर उसकी कीमत एक लाख हो जाती है। हमारा जीवन भी ऐसे ही है। इसको भी तराश देने पर इसकी कीमत बढ़ती है और यह तराशने का काम लोग नहीं करते हैं। इसीलिए सब दुखी हैं। जो समझें वह यह काम करें।

धन सुख न देगा, पद सुख न देगा, सम्मान और पूज्यता सुख न देगी। जगत में प्रसिद्धि हो जाये तो इससे सुख न मिलेगा, शांति न मिलेगी। जीवन निर्मल होगा तभी सच्ची शांति मिलेगी, सच्चा सुख मिलेगा। यह बात समझना कोई गूढ़ नहीं, बहुत सरल है। हां, ध्यान दे और समय लगाये तब बात समझ में आये। अब समय ही नहीं है, फुरसत ही नहीं है, ध्यान ही नहीं देते हैं तब समझ में कैसे आये।

लोग तो चौबीस घण्टे बकवास करते हैं। चार जने बैठे कि बकवास शुरू कर देते हैं। काम-धाम किये तो ठीक है। काम-धाम तो करना ही चाहिए लेकिन फुरसत के समय में या तो टी.वी. देख रहे होते हैं या बकवास कर रहे होते हैं। अखबार पढ़नेवाले तो घंटों-घंटों अखबार ही में डूबे रहते हैं। अखबार जो पढ़ते हैं उनको चाहिए कि अखबार को थोड़ा-मोड़ा देख-दाखकर रख देना चाहिए। उसमें बहुत समय व्यर्थ नहीं करना चाहिए। टी.वी. बहुत ज्यादा न देखो। समय बचाकर अपने मन को संवारने-सुधारने का काम करो। अकेले में बैठो और अपने को शोधो। हिसाब लगाओ कि काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या और द्वेष ये जो मेरे विकार थे कितने घटे। जो अपने मन को न देख सके वह कौन इंसान है। अपने मन के विकारों को जो न समझ पाये वह कौन-सा इंसान है। जो यह न समझ पाये कि आज से दो-चार वर्ष पूर्व जो मेरे मन की दशा थी, गत वर्ष जो मेरे मन की दशा थी, गत महीनों में जो मेरे मन की दशा थी आज वही है कि बदली है। इसप्रकार चिंतन-मनन करते हुए आदमी निरन्तर स्वच्छता की तरफ बढ़ता जाये। उसके मन की मलिनता घटती जाये तब जानो जीवन में सफलता हो रही है।

पैसा बढ़ रहा है तो मन गदगद है कि खूब माल आ रहा है। ठीक है, व्यापार करते हैं, काम करते हैं तो पैसा आना चाहिए। पैसे की जरूरत है लेकिन उसमें बहुत फूलो न। बहुत पैसा आ जायेगा तो झंझट और महा दुख में फंस जाओगे। इसलिए बहुत पैसा आने से बहुत खुश होने की जरूरत नहीं है। बड़ा सम्मान होने लगा, सत्कार होने लगा तो क्या होगा। हजारों लोग हाथ जोड़कर वन्दना करते हैं तो क्या इससे कोई लाभ होनेवाला है! सोचना चाहिए कि जो वन्दना करते हैं उनकी वैसी भावना है। अगर वे सही करते हैं तो उनका चित्त शुद्ध हो सकता है लेकिन जिसकी वन्दना हो रही है उसको उसमें लाभ नहीं है और वह अगर सावधान न रहे तो उसकी हानि ही है। अगर मन सम्मान पाकर फूल गया तो उसका नुकसान हो जायेगा।

दुनिया की वस्तुओं का जखीरा इकट्ठा करने पर आपकी उन्नति मानी जाये यह ठीक नहीं है। आपकी उन्नति है चित्त की उन्नति। आपका चित्त निर्मल हो। आपका चित्त द्वेषरहित हो, घृणारहित हो, कामरहित हो, क्रोधरहित, दमरहित, मोहरहित हो। चित्त का निर्मल हो जाना ही उन्नति है और इसी में शांति है।

मन नहीं ठहरता है, क्यों? क्योंकि विवेक नहीं है, वैराग्य नहीं है, अनासक्ति नहीं है। तनिक बात आयी कि आन्दोलन शुरू हो गया। सुबह से शाम तक घूम-घूमकर वही-वही सोच रहे हैं। जरा-सी बात आयी कि मन ठहर ही नहीं रहा है क्योंकि आपने अपने को मजबूत नहीं किया है। आपने बाहरी हानि-लाभ को बहुत श्रेय दिया। अब तनिक भी बात आ गयी तो चैन नहीं आ रहा है। जब आप विवेक में बलवान हो जाओगे तो बड़ी से बड़ी बातें भी कुछ नहीं रहेंगी। वे धूल की तरह आयीं और गयीं लगेंगी। अपने को इतना मजबूत बनाओ कि किसी भी स्थिति में विचलन न हो। आपकी विशेषता है अपने को विवेक में दृढ़ कर लेना। अन्दर से अपने को मजबूत कर लेना।

जीवन में समता की स्थिति आना जीवन की विशेषता है। समता का अर्थ है सुख-दुख, हानि-लाभ, जय-पराजय, सम्मान-अपमान सभी स्थितियों में शांत रहना। आपको लौकिक लाभ मिला तो एकदम फूल गये, पुलकित हो गये। कहते हैं कि एक व्यक्ति की लाटरी खुल गयी। उसमें करोड़ों रुपये मिल गये तो मारे हर्ष से उसका हार्ट अटैक हो गया और वह मर गया। इसलिए बहुत हर्ष दुखदायी है और शोक तो दुखदायी है ही और यह सब अपने को मजबूत न करने से होता है। जो अपने को विवेक में मजबूत कर लेता है वह निर्भय हो जाता है और यह एक दिन की बात नहीं है। इसके लिए रोज-रोज श्रम करना पड़ेगा।

ध्यानाभ्यास इसीलिए कराया जाता है। अध्ययन-मनन पर जोर इसीलिए दिया जाता है। जो भूमिका बतायी जाती है उसके लिए आहार-विहार संतुलित रखो।

सब्जी ऐसी बने कि उसमें तेल का पता नहीं लगना चाहिए। सब्जी छौंके तो इतना ही तेल डाले कि सब्जी खाते समय तेल का पता न लगे और आप यह भी कह सकते हैं कि तेल ही न हो तो क्या हर्ज है। वही तो बढ़िया है लेकिन भारत वाले इसको कब मानने वाले हैं। इनकी जीभ मिर्च-मसाले से जबतक ऐंठ न जाये तबतक इनके अनुसार सब्जी ही नहीं है। जब जीभ पर रखो और जीभ ऐंठ जाये तब बढ़िया सब्जी है लेकिन यह बहुत हानिकर है। तेल बहुत कम खाना चाहिए। उत्तेजक मसाले नहीं खाना चाहिए। जीरा, धनिया, हल्दी और हलका नमक ही बहुत अच्छा मसाला है। कहने की बात है कि अपने को संभालो।

बात मैंने उठायी थी कि भय क्यों होता है? भय इसलिए होता है क्योंकि हमारा यह मन कमजोर है और हानि-लाभ का गुणा-भाग बहुत करता है। तनिक भर बात आयी कि बस उठते-बैठते चैन नहीं है। जब रोज-रोज एकान्त में बैठोगे, चिंतन-मनन करोगे, मन का विकार दूर होगा, आसक्ति दूर होगी तब विवेक बलवान हो जायेगा और किसी भी परिस्थिति में आप विचलित नहीं होंगे। तब जीवन का सच्चा आनन्द होगा। आप क्या यह मानते हैं कि आपके पास जो सबसे प्रिय है क्या वह आपके पास जीवनभर रहेगा। आपके जीवन के रहते-रहते ही ऐसा हो सकता है कि जो आपका बहुत प्रिय है वह खो जाये। क्योंकि सबका प्रिय खोता है।

देखा जाता है कि पिता बैठा रहता है और पुत्र चला जाता है। पति बैठा रह जाता है और पत्नी चली जाती है, पत्नी बैठी रह जाती है और पति चला जाता है। प्यारा धन चला जाता है। पद तो जाता ही है। राजनेताओं की दशा तो देखते ही हो। अगर दुर्दशा देखनी हो तो राजनेताओं की देख लो। मैं तो कहता हूं कि जिसको कहीं कोई काम न मिले वही राजनीति में जाये।

राजनीति की जगह गदहलत्ती की जगह है। कई गदहे एक जगह रहते हैं तो एक दूसरे को लात मारते रहते हैं। उसी प्रकार राजनीति में भी मैं देखता हूं। आपको दुर्दशा देखनी हो तो राजनेताओं को देख लो। शांति चाहो तो राजनीति से हजार कोस दूर रहो। आत्मशांति का काम करो और अंतर्मुख बनो। अपने को शोधो। जब अपने को शोध लोगे तब पक्का हो जाओगे और तब इसी ऊबड़-खाबड़ संसार में रहते-रहते, इसी दुनिया के गर्दा-गुब्बार में और हल्ला-गुल्ला के बीच में रहते-रहते आप प्रशांत, आनन्दमय और निर्भय होकर विचरोगे।

इसलिए अंतर्मुख बनो और रोज एकान्त में बैठकर चिंतन करो, अध्ययन करो, मनन करो और यह विश्वास करो कि हम अपने आप के अन्दर के विवेक को मजबूत करने वाले हैं। इसको कोई दूसरा नहीं कर देगा। संत-गुरु तो केवल रास्ता बता देंगे, करना पड़ेगा हमें ही।

अतः आप सब इस काम में पूरी लगन से डट जायें और एकान्त चिंतन, अध्ययन, मनन के द्वारा अपने चित्त को शोधकर निर्मल बनायें और जीवन में जो भय का विकार है उससे मुक्त हों। इसी शुभकामना के साथ मैं अपनी वाणी को विराम देता हूं। ❑